प्रस्तर पर मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का दृश्य छपा है—जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा लिपिक व्याख्या का विवरण लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुनकोण्डा दूसरी सदी ई०
सौजन्य राष्ट्रीय संग्रहालय नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

कुशललाभ

लेखक

ब्रजमोहन जावलिया



साहित्य अकादेमी

Kushallabh A monograph in Hindi on mediaeval Rajasthani poet by Brajmohan Javalia Sahitya Akademi New Delhi (1987) Rs 5

साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण 1987

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन 35 फीरोजशाह मार्ग, नयी दिल्ली-110001

क्षेत्रीय कार्यालय

ब्लाक V-बी रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम कलकत्ता 700029
29 एलडाम्स रोड (द्वितीय मंजिल) तेनामपेट, मद्रास 600018
172 मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400014

मूल्य
पांच रुपये

मुद्रक
रूपाभ प्रिंटर्स
दिल्ली 110032

विषय-सूची

1
तद्युगीन राज और समाज

विदेशी आक्रमणों का शताब्दियों तक सामना करने वाला भारतवर्ष खण्ड खण्ड होकर अब पूरी तरह विदेशी दासता के चंगुल में फँस चुका था। देश में सर्वत्र अशान्ति और अस्थिरता का साम्राज्य व्याप्त हो चुका था। वंशगत इकाइयों में विभाजित राजस्थान के शासक केन्द्रीय सत्ता या अपने पार्श्ववर्ती विधर्मी शासकों से पराभूत हो कभी उनके आधीन हो जाते और स्वाधीन होने की चेष्टा भी कर लेते थे। राणा सांगा के छत्र के नीचे संगठित होकर एकछत्र राजपूत साम्राज्य का उनका स्वप्न भी जब बाबर से मिली पराजय के कारण भंग हो गया तो एक एक कर सभी ने मुग़ल शासकों की शरण ले ली।

अपनी उदार, सहिष्णुतापूर्ण तथा कुशल राजनीति के सहारे इन राज्यों के प्रति सुनियोजित नीति बनाकर अकबर ने इन्हें केन्द्रीय सत्ता के साथ संयुक्त करने का प्रयास किया। उसने राजपूत राजाओं से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर सहयोग लिया। राजनीतिक दृष्टि से शून्य और आर्थिक दृष्टि से विपन्न राजाओं और उनके राजकुमारों को बादशाही सेना में मनसब देकर उन्हें सदा के लिए अपना गुलाम बना लिया। साधारण राजपूतों को भी शाही फौज में भर्ती कर उन्हें आवश्यक रोजगार दिए गये। उसकी इसी नीति के कारण राजस्थान में अपेक्षाकृत शान्ति व्याप्त हो पायी। मेवाड़ का राजवंश ही एकमात्र ऐसा राजघराना रह गया था जिसने अपनी आज़ादी की रक्षा के लिए अकबर की नींद हराम कर दी।

अकबर से सम्बद्ध हुए जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर आदि राजाओं ने अकबर के सैनिक अभियानों में पूरा योग दिया और लूट के माल से स्वयं को लाभान्वित किया। इन अभियानों में साथ चलने वाले व्यापारी और शिल्पी भी साधन सम्पन्न बन गये। सैनिकों ने युद्ध कला विषयक अपने अनुभवों में वृद्धि की। तोप, बन्दूक आदि नवीन अस्त्रों के निर्माण और संचालन में उन्होंने दक्षता प्राप्त की। लोगों में दूर देशान्तर तक व्यापारिक यात्राओं के प्रति रुचि जाग्रत हुई।

मुग़लिया शान शौकत और जीवन पद्धति से निकट के सम्पर्क ने राजपूत

राजाओ की जीवन पद्धति मे आमूलचूल परिवर्तन कर दिया। उनकी वेश भूषा, बोल चाल, रहन सहन तथा दरबारी शिष्टाचार के तौर तरीके सर्वथा बदल गये। उनके दृष्टिकोणो म व्यापकता आई, अनुभव म वृद्धि हुई और जीवन के प्रति लालसा भी बढी। राजकुलो से सम्बद्ध पडित, परिचारक, कवि, वैद्य, अन्त - पुरवासी रानियो और दासियो तक म मुगलो के सम्पर्क से अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया।

राज्यो म बराबरी की भागीदारी का दावा रखन वाले और समय समय पर राजाओ के विरुद्ध विद्रोह का झडा खडा करने वाले सामन्त अब नरेशो की प्रभु सत्ता मे वृद्धि और उन पर केन्द्रीय सत्ता की कृपा से स्वामीभक्त बन गये। राजाओ के निरन्तर शाही सेवा म बाहर रहने के कारण उनके आमात्य, मुसाहिब आदि अधिकारीगण प्रबल होकर राजाओ के घरेलू मामलो तक मे हस्तक्षेप करने लगे। राजसत्ता और राज्यकोष के बल पर निहित स्वार्थ वाले लोग अपने प्रभुत्व और समृद्धि मे वृद्धि करने लगे।

मुगलो के साहचर्य म राजाओ के द्वारा बहुपत्नी प्रथा को बढावा दिए जाने से अन्त पुरो की शान्ति भग हो गयी। ज्येष्ठ पुत्र के उत्तराधिकार की परम्परा गत व्यवस्था केन्द्रीय सत्ता के हस्तक्षेप क कारण टूटने लगी। टीके का दस्तूर बादशाह के निर्णय के अधीन हो गया। राजा स्वय अपनी सर्वाधिक प्रिय रानी के पुत्र को उत्तराधिकार देन लग गये।

सुरा, सुन्दरी और अफीम का सेवन तथा रात दिन शिकार मे रत रहना ही अब राजाओ का काम रह गया। शिक्षा और संस्कृति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा। राजाओ के मनोविनोद के लिए नियुक्त पातरा और कचनियों तक को अन्त पुर म रखैलो के रूप मे रखा जाने लगा।

राज्यो की आन्तरिक व्यवस्था को सचालित करने वाला वैश्यवर्ग राज परिवारो को अपनी राजनीतिक कुटिलता के पाश म आबद्ध करने लगा। उसका एकमात्र ध्येय अब येनकेन प्रकारेण अपने स्वार्थ की सिद्धि ही रह गया था।

राजमहिषियो म धर्म कर्म व्रत उपवास, कथा, भागवत, भजन पूजन की रुचि मे अभिवृद्धि हुई। राजपरिवार की पासवानो, पड़दायतो और दासियो तक ने भक्ति मार्ग का अनुसरण किया। नाथ पथ, निर्गुण, निम्बार्क और वल्लभ सम्प्रदायो को राजपरिवारों ने प्रश्रय दिया तथा राजमहिषियो और राजपरिवार की महिलाओं ने अनेक मन्दिरो का निर्माण कराया।

आय दिन वैश्यवर्ग के बढते वर्चस्व के कारण राजपूत नरेशों ने जैन धर्म के प्रचार मे भी सहयोग दिया। मुस्लिम सत्ता के सर्वथा अधीन हो जाने के कारण उन्होने अपने राज्यो म मस्जिदो मजारो व अन्य मजहबी स्थानो के निर्माण म भी पूरा सहयोग दिया। अकबर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति के कारण सभी धर्मों

के अनुयायी निर्भय होकर अपने धर्म का पालन करने लगे। यहाँ तक कि अकबर के हरम में भी राजपूत परिवारों से ब्याही गयी बेगम हिन्दू देवी देवताओं की पूजा आराधना करती थी। अकबर की इस नीति का लाभ लेकर हिन्दू नरेश भी अपने पर्व निर्बाध रूप से मनाते और राजदरबार भरते रहे।

चारण कवियों का प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। वे राजाओं से लाख पसाव, क्रोड पसाव, सजक पुरस्कार और दानस्वरूप सासण प्राप्त कर रहे थे। उनके विरुद काव्यों को अधिकाधिक सम्मान मिलने लगा। वे अब अपने रीति रिवाज और शिष्टाचार में राजपूतों के अनुकूल परिवर्तन कर स्वयं को उन्हीं के स्तर का समझने लगे थे। विवाहादि अवसरों पर दान के लिए हठ और सामूहिक धरनों द्वारा राजपूतों को विवश करने की उन्होंने नीति अपना ली। इच्छानुकूल दान न देने वालों की वे निन्दा करते थे। कई एक चाटुकार विरुदगायकों को मुक्तहस्त दान देकर राजपूत दरिद्रता का आह्वान कर रहे थे। साधारण परिवारों में जन्मी कई एक चारणी महिलाओं की सिद्धियों की गाथाएँ समाज में श्रद्धा के साथ कही सुनी जाती थी। उन्हें शक्ति के रूप में प्रचारित प्रसारित किया जा रहा था।

सत्य, धर्म, शौर्य और क्षत्रियोचित गुणों को प्रोत्साहन देने वाले विद्वान चारणों को सभी सम्मान की दृष्टि से देखते थे। कई एक विद्वान चारण स्वयं राजपूतों के साथ कंधे से कंधा लड़ाकर युद्धों में भाग लेते थे। गौ, ब्राह्मण और अबला की भाँति चारणों को भी अवध्य माना जाता था। राज्यों द्वारा प्रदत्त करों में छूट का लाभ उठाकर चारण व्यापार में संलग्न हो रहे थे। चारणों की भाँति ही काव्य रचना में दक्ष रावल मोतीसर और राणीमंगा जैसी जातियाँ भी समाज में विद्यमान थी। भाटों और कवीश्वरों की एक और काव्यकर्मी जाति 'पिंगल' में कविता करती आ रही थी। चारणों की भाषा डिंगल के नाम से ज्ञात थी। इनके व्यावसायिक संघर्ष के कारण दोनों का साहित्यिक द्वन्द्व प्रसिद्ध है। चारणों का वर्चस्व उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र में था, और भाटों का पूर्वी और दक्षिणी राज्यों में।

जैन धर्मावलम्बी वैश्यवर्ग में ओसवाल नाम से जानी जाने वाली शाखा, जो अपनी उत्पत्ति राजपूत राजवंशों से ही मानती है, व्यवसाय के अतिरिक्त शासकों के निकट सम्पर्क के कारण अधिक प्रभावशाली बन गयी थी। वैश्य होते हुए भी वे सैन्य संचालन करते थे। वैष्णव धर्मावलम्बी राजपरिवारों से सम्बन्धों के कारण तथा हिन्दू बहुल समाज में रहने के कारण वे अपने समाज में जैन धर्म का पालन करते हुए भी वैष्णव धर्म के प्रति भी आस्थावान थे। विवाह सम्बन्ध इनके जैन ओसवालों में ही तय होते थे।

ब्राह्मण अपने धार्मिक एकाधिकार के कारण सर्वमान्य थे। जीवन यापन की दृष्टि से वे क्षत्रिय या वणिक वर्ग पर आश्रित थे। अध्ययन, अध्यापन, ज्योतिष,

यथा, कर्मकाण्ड, कथावाचन, भजन कीर्तन, देवपूजन आदि के द्वारा वे अपनी जीविका का अर्जन कर लेते थे। चारणों का प्रभाव राजन्य वर्ग में बढ़ जाने से इनको दिये जाने वाले दानों में कमी आयी। पारम्परिक उच्च शिक्षा अब भी उनके लिए सुलभ थी।

वणिक-वर्ग हिसाब किताब में दक्ष था। यह शिक्षा उन्हें अपने घरों में ही मिल जाती थी। चारणों और भाटों को भी काव्य कला की शिक्षा घरों में ही काव्य कला में दक्ष किसी परिजन से मिल जाती थी। पुस्तक-लेखन का काम ब्राह्मण भोजक, मथेण सेवक आदि जातियाँ करती थी। धार्मिक सम्प्रदायों में ग्रन्थ रचना का कार्य प्रचुर मात्रा में होता था। जैन मुनि और आचार्य भी सम्प्रदाय में मान्य ग्रन्थों को स्वयं लिपिबद्ध कर लेते थे। संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं और साहित्य के अध्ययन के लिए व्याकरण और काव्य शास्त्र का पठन पाठन तथा ग्रन्थों पर टीका लेखन का प्रचलन था।

चित्रकार शृंगारमूलक आख्यान काव्यों तथा धार्मिक आख्यानों पर आधारित दृश्यों द्वारा राजभवनों, देवालयों या श्रेष्ठिवर्ग के भवनों को चित्रित और अलंकृत करते तथा शिल्पी देव भवनों और देव मूर्तियों के निर्माण में व्यस्त रहते थे। स्वर्णाभूषणों के निर्माण, वस्त्रों की रंगाई छपाई रंधाई का काम भी शिल्पी करते थे। सिकलीगर और लोहार, अस्त्र शस्त्रों तथा कृषि उपकरणों का निर्माण करते थे। बनजारे और सौदागर अनेक वस्तुओं के व्यापार द्वारा प्रभूत लाभ अर्जित करते थे। नट, स्वांग, भांड, भवाई आदि कलावन्त जातियाँ कला प्रदर्शन द्वारा लोगों का मनोविनोद कर अपना जीवन यापन करती थी।

श्रमिकों की स्थिति शोचनीय थी। भारवाहक, खनक तथा लकड़हारे खेत खलिहान जंगल और हाटों में काम कर जीवन यापन करते थे। ऋणग्रस्त श्रमिक परिवार क्रीतदासों के रूप में अमीरों के यहाँ बंधक का जीवन जीते थे। कृषक और कमकर अपने श्रम का समुचित फल प्राप्त नहीं कर पाते थे। निरन्तर पड़ने वाले अकालों और सैनिक अभियानों से फसलों के नष्ट हो जाने के कारण कृषक वर्ग की आय सदा डांवाडोल ही रहती थी। सिंचाई के अभाव में वर्षा ही कृषकों की जीवनाधार थी। असुरक्षा की अवस्था में किसान अपनी ज़मीनें छोड़कर अन्यत्र चले जाते थे। राजा और सामन्त अपनी आर्थिक समृद्धि के लिए किसानों और व्यापारियों को आमन्त्रित कर अपने यहाँ बसाते थे।

गाँवों और कस्बों में लोग जातिगत समुदायों में निवास करते थे। कभी कभी एक ही प्रमुख जाति की बहुलता वाले अनेक गाँव होते थे। दूसरी जाति के लोग इन्हीं के आश्रित होते थे। लोगों की समस्याओं का समाधान उनकी जातिगत पंचायतों में होता था।

कुछ उद्दंड राजपूत स्वतन्त्र रूप से यत्र तत्र दौरे करते हुए डाका डालने या

लूटपाट मचाने में व्यस्त रहते थे। सम्पन्न लोग यात्राओं में अपने रक्षक को साथ रखते थे। तीर्थ यात्री अपनी रक्षा की पूरी तैयारी करके ही सामूहिक रूप में संघ बनाकर यात्रा करते थे। जैन तीर्थों के यात्री, संघों का व्यय प्रायः कोई एक ही श्रेष्ठि वहन करता था। पुरोहित वर्ग तथा याचक जातियों को राज्य करों में छूट दी जाने के कारण व्यापारी वर्ग कभी-कभी अपने सामान की सुरक्षा का जिम्मा उनको सौंप कर जोखिम और राजकीय कर दोनों से मुक्ति पा लेते थे। प्रायः चारण लोग ऐसा कार्य करते थे। एक राज्य से दूसरे राज्यों में यात्रा करने पर आम लोगों पर कोई पाबंदी नहीं थी। पर उन्हें राज्यों के चुंगी नाकों पर कर अवश्य चुकाने पड़ते थे। भ्रमणशील बनजारों और राह चलती कतारों से निर्धारित मात्रा में कर लिया जाता था। घोड़ों के व्यापारी भी कर देते थे।

राजपूत वर्ग अनेक कुरीतियों से ग्रस्त था। दहेज के डर से कन्या का जन्मते ही वध और जबरन सती प्रथा दो प्रमुख निंदनीय बातें थीं। परम्परा से अफीम के शौकीन राजपूतों में मुस्लिम सभ्यता के प्रभाव से मदिरा का प्रचलन भी अधिक हो चला था।

बढ़ती हुई बहुपत्नी प्रथा के कारण परिवारों का आंतरिक कलह बढ़ गया। बाल विवाह और वृद्ध विवाह भी घुन की भाँति व्याप्त होकर समाज को निर्जीव करते जा रहे थे।

राजपूतों के अनुकरण पर अन्य वर्ग भी रखैलें रखने लगे थे। ऐसी अवैध सन्तानों से गोला, दरोगा, पासवान या दासा जैसे अनेक जातिगत नवोत्पन्न उपवर्ग बन गये जिन्हें समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था। गोला या दरोगा कहे जानेवाले ये लोग पीढ़ियों तक दहेज के रूप में दिये जाते रहे और कभी कभी सती होनेवाली राजपूत रमणियों के साथ चिता में जलाये भी जाते रहे।

मुगल हरमों के अनुकरण पर अन्तःपुरों में नाजरों के रूप में नियुक्ति हेतु बालकों को नपुंसक बनाने का व्यवसाय चल पड़ा था। समूची क्षत्रिय जाति एक झूठे दम्भ और वरीयता के अहंकार में जी रही थी। पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष, मान-सम्मान, ऊँच नीच, कुलगत वैमनस्य और प्रतिशोध के गुणावगुण उनकी संगठित शक्ति में बाधक बने हुए थे। भूमि पर अधिकार की लालसा से बंधे होकर वे अपनी बहन बेटियों को विधवा बनाने लगे थे। पिता पुत्र, भाई बन्धुओं की हत्या करने और कुटिल नीति में निम्न स्तर पर भी उतर आने में वे हिचकिचाते नहीं थे। मुगलों का संरक्षण पाकर अनेक राज परिवारों ने अपने प्रतिशोध की ज्वाला को शान्त करने के प्रयास किये थे।

अनियन्त्रित भोग विलास के कामों में साधन जुटाने के लिए जन साधारण पर भाँति भाँति के कर आरोपित किए गए। छोटे छोटे जागीरदारों ने भी राजाओं का अनुसरण किया, जिससे गाँवों और नगरों की आर्थिक स्थिति चरमरा गयी।

लूटमार में गाँवों को लूटने लगे।

शिक्षा की सुविधा तथाकथित उच्च और कुलीन वर्ग और मध्य वित्त के लोगों तक ही सीमित थी। निम्न वर्ग तथा स्त्री वर्ग प्राय इससे वंचित ही था। साहित्य तथा कला आदि उच्च कुलीन लोगों की बपौती थी। संगीत और नृत्य को प्राय पेशेवर वेश्याएँ ही अपनाती थी। राजघरानो मे वेश्याओं का मान था। वेश्याएँ धार्मिक गोष्ठियो और उत्सवो मे भी भाग लेती थी। धार्मिक सम्प्रदायो ने संगीत की रक्षा की।

समाज म स्त्रियो का कोई महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नही था। उनमे पर्दा प्रथा प्रचलित थी। घरो का सारा काम वे देखती थीं। निम्न वर्ग म वे खेती और पशु-पालन का काम भी करती थी। उनका जीवन एक तरह से सर्वथा पराधीन था। वे पुरुषो के लिए मात्र भोग की वस्तु थी। समाज धार्मिक अंधविश्वासो और परम्परागत रूढियो म ग्रस्त था। चिकित्सा, शिक्षा, संचार और आवागमन के साधन उन्नत अवस्था में नही थे।

बलात धर्मपरिवर्तन का बोलबाला था। इस प्रकार वे मुसलमान निरंतर आगे बढ रहे थे। इस युग मे शाक्त और शैव सप्रदाय अध पतन को प्राप्त हो रहे थे। वैष्णव सम्प्रदाय की राम भक्ति और कृष्ण भक्ति शाखाएँ अभ्युदय को प्राप्त कर रही थी। रामानद और निम्बार्क के शिष्य सगुणोपासना का सदेश लेकर राजस्थान मे प्रवेश कर चुके थे। इनका प्रभाव राजपूत रनिवासों पर बढता जा रहा था। पुष्टिमार्गीय कृष्ण भक्ति की जनसाधारण म एक प्रबल लहर सचरित होती जा रही थी। रानियाँ और ठकुरानियाँ राधाकृष्ण के मदिरो का निर्माण कराने लगी। महिला समाज म मीरा के भजनो, नरसीजी के मायरे, पदम भगत के विवाह जैसी रचनाओं में श्रद्धा और अभिरुचि का उदय होने लगा था।

उत्तरी राजस्थान मे विश्नोई और जसनाथी सप्रदायो का वर्चस्व ग्रामीण समाज मे बढ चला था। इसका प्रमुख कारण था इनके नियमो की व्यावहारिकता और जीवन म उनकी उपादेयता। इन सप्रदायो न जनसामान्य के चारित्रिक और भौतिक उत्थान मे योग दिया। परम्परागत बधनो के माध्यम स इन्होंने अपनी नवीन मान्यताओ से जन मानस को उद्वेलित कर एक नई क्रांति को जन्म दिया। तत्कालीन साहित्य म यह स्पष्ट दिखायी देता है। ढूढाड म आमेर और नराणा को केन्द्र बनाकर नवोत्पन्न दादू पथ ने अपने उपदेशो से जनसाधारण को व्यापक रूप से प्रभावित किया। और भी अनेक छोटे मोटे धार्मिक सप्रदायो का प्रदेश म उदभव हुआ, पर वे कृष्णभक्ति के प्रबल प्रवाह म विलीन हो गये।

कोई भी साहित्यकर्मी सामान्यत समकालीन परिस्थितियो से अप्रभावित रह नही सकता। उसके परित व्याप्त वातावरण का ज्ञान उसके साहित्य की सम्यक समीक्षा मे सहायक सिद्ध हो सकता है। कुशल-लाभ भी तद्युगीन

सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक या आर्थिक परिस्थितियों से असम्पृक्त नहीं रह सका। उसके द्वारा विरचित साहित्यिक कृतियों में इन परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

राजस्थान और उसकी धारा और पनपती पुसती संस्कृति, ह्रासोन्मुख सामाजिक व्यवस्था, शिल्प स्थापत्य संगीत नाट्य और चित्रकर्म विषयक ललित कलाओं के संकेत, रहन सहन खानपान, रीतिरिवाज, व्यवहार लोक विश्वास, वस्त्राभूषण, प्रसाधन सामग्री, मनोविनोद के साधन, आदि की झांकी उसमें प्रदर्शित मिलती है। बालविवाह, पर्दा प्रथा, राजन्यवर्ग और सामन्तवर्ग द्वारा प्रजा का उत्पीड़न, दुर्बल का दमन, परदाराओं के अपहरण द्वारा शौर्य के प्रदर्शन जैसे दुर्गुणों से ग्रस्त समाज का कुशललाभ ने यत्र-तत्र सम्यक् चित्रण किया है।

धर्म की वास्तविक परिभाषा से अनभिज्ञ धर्म गुरुओं द्वारा कर्मकाण्डों के पाश में जन सामान्य को पांस रखने के उपक्रम जादू-टोना तान्त्रिक और मांत्रिक अभिचार, भूतप्रेत, यक्ष-व्यन्तरों का आतंक तथा ग्रह गोचरों की उल्टी सीधी गति से ग्रस्त मानवों के भाग्य का दिग्दर्शन आदि कुशललाभ की कृतियों के अभिन्न अंग हैं, जो सामान्यतः उसके समयुगीन अन्य कवियों की कृतियों में भी विद्यमान हो सकते हैं पर कुशललाभ की रचनाओं में इनका सबका उल्लेख विशेषपूर्वक किया गया मिलता है। इसका कारण यही हो सकता है कि वे राज्याश्रित साहित्यकार के साथ साथ एक जैनधर्मावलम्बी आचार्य भी थे। और जैन सम्प्रदाय के मूल सिद्धान्त दान, शील, तप, संयम और अहिंसा आदि के प्रबल पोषक मनीषी।

पुनर्जन्म के प्रति हिन्दू समाज की पूर्ण आस्था, संसार की असारता, पाप पुण्य से संबंधित कर्मों की यथानुरूप फल प्राप्ति, जीवन के अंतिम चरण में दीक्षित होकर राजा और प्रजा का वैराग्य धारण करना, देवी देवताओं की पूजा-अर्चा, व्रत उपवास, तीर्थयात्रा जैसे पारम्परिक विश्वासों को भी कुशललाभ ने अपनी रचनाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।

राजन्यवर्ग और लक्ष्मी पुत्रों के आडम्बरपूर्ण जीवन और विलासमय नागरिक संस्कृति में आश्चर्यजनक अजनबीपन का नज़ारा, राज्य की न्याय व्यवस्था, आमात्यों और पुरोहितों के वर्चस्व, शासन की गुप्तचर व्यवस्था में वारवनिताओं की भूमिका, सुन्दरियों के वरण हेतु संघर्ष, लोभग्रस्त राजाओं और सामन्तों के द्वारा प्रजा पर अत्याचार के इतिवृत्त भी कुशललाभ ने स्वरचित साहित्य में बड़ी कुशलता के साथ संजोये हैं।

कुशललाभ के समकालीन प्रायः सभी सुयोग्य साहित्यकार, कवि या लेखक को किसी न किसी धनीमानी सेठ साहूकार, शासक, सामन्त या सम्राट का आश्रय प्राप्त था। उनमें से अधिकांश ने जनसाधारण के जीवन से बहुत दूर अपने आपको स्थापित कर लिया था। अपने आश्रयदाता के काल्पनिक गुणों का बखान और

चाटुकारिता उनके जीवन के प्रमुख अंग बन चुके थे। उस युग में साधु प्रकृति के ऐसे साहित्यकार भी विद्यमान थे, जिन्होंने सात्त्विक जीवन यापन के साथ साथ लोक के आध्यात्मिक और नैतिक उत्थान हेतु अपना जीवन समर्पित कर रखा था। कुशललाभ इसी कोटि के साहित्यकार थे। वे एक विशाल राज्य के शासक के साहित्यिक और नैतिक आचार्य थे। राजकीय जीवन का उन्होंने अत्यन्त समीप से अध्ययन किया था। गाँव गाँव घूमकर, जनसामान्य के संपर्क द्वारा उन्होंने लोक-जीवन का भी सम्यक्‌रूपेण ज्ञान प्राप्त किया।

समकालीन लोक जीवन के प्रति प्रगाढ़ संबंध के साथ साथ पारम्परिक लोक साहित्य के अध्ययन के प्रति उनके लगाव, कविकर्म में उनकी अभिरुचि, छन्द शास्त्र में पटुता, प्रकृति के प्रति प्रेम तथा भक्ति और भावुकता से परिपूर्ण उनके मानस ने अपने परित: व्याप्त वातावरण और परिस्थितियों को अपनी रचनाओं में सम्यक्‌ रूप से चित्रित कर पाने में बहुत अधिक योग दिया है। संलग्न अध्यायों में इस विषयक विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की गयी है।

2
जीवनवृत्त और काव्य-सृष्टि

कुशललाभ के जन्म और जीवन वृत्त के विषय में कोई विशेष ज्ञातव्य तथ्य उपलब्ध नहीं है। कुशललाभ द्वारा विरचित साहित्य के आधार पर मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि कुशललाभ ने संभवत ई० सन 1543 (स० 1600) मे साहित्य कर्म प्रारम्भ किया था, और उनका यह क्रम लगभग ई० सन 1581 (स० 1648) तक अबाध गति से चलता रहा। सन् 1543 ई० (स० 1600) में उन्होंने हसदूत' काव्य की प्रतिलिपि अलवर नगर में अपने स्वय के पढने के लिए तैयार की थी। उस समय वे पडित पदवी से विभूषित और मुनि पद पर प्रतिष्ठित थे। जैसा कि उक्त ग्रंथ की निम्नांकित पुष्पिका से स्पष्ट है —

'सवत 1600 वर्षे माघ वदि पचम्यां दिने भौमवासरे हस्त नक्षत्रे श्री अलवर नगरे श्री खरतर गच्छे श्री जिनमाणिक्य सूरि विजयराज्ये श्री अभय धर्मोपाध्यायाना शिष्य प० कुशललाभ मुनिना स्ववाचनाथ विलिखे।''

इस पुष्पिका से स्पष्टत अनुमान लगाया जा सकता है कि पडित उपाधिधारी मुनि कुशललाभ की आयु स० 1600 मे 20 से 25 वर्ष के मध्य अवश्य रही होगी। कुशललाभ का जन्म ऐसी स्थिति में स० 1575 से 1580 के मध्य कही स्थिर कर सकते हैं। यदि तजसार रास' के विवादास्पद तथाकथित रचयिता जय मंदिर, जिसके द्वारा उक्त ग्रथ की रचना स० 1592 में किए जाने का उल्लेख मिलता है, और कुशललाभ मे अभिन्नता स्थापित की जा सके तो कुशललाभ के जन्म को और भी 7 8 वर्ष पीछे तक लाया जा सकता है। कुशललाभ की एक अन्य रचना 'पिंगल शिरोमणि' की पुष्पिका मे स० 1575 में उनकी रचना के उल्लेख ने श्री अगरचन्द नाहटा को कुशललाभ की जन्मतिथि को और भी पहले स० 1550 की ऊहापोह मे ला खडा किया था, पर यह संभावना रचनाविषयक वास्तविक तिथि के उदघाटन से स्वत समाप्त हो जानी चाहिए। 'पिंगल शिरोमणि' ग्रथ के परिचय मे यह तथ्य विस्तार से द्रष्टव्य है।

कवि के द्वारा विरचित अंतिम रचना 'गुणसुन्दरी चौपई' का रचनाकाल संवत् 1648 में मिलता है, अत इसके आधार पर 1650 वि० या उसी के आस पास उनके शिवपद प्राप्ति की कल्पना की गयी है, जो उचित ही है।

कुशललाभ के जन्म, जन्म स्थान, माता पिता आदि से संबंधित कोई जानकारी किसी भी स्रोत से उपलब्ध नहीं है, पर उनके द्वारा प्रणीत ग्रंथ 'तेजसार रास', 'अगडदत्त रास', 'भीमसेन हंसराज चोपई', जिनपालित जिनरक्षित गाथा' तथा 'पार्श्वनाथ दशभव स्तवन', में भी 'हंसदूत' काव्य की भाँति उन्होंने अपने गुरु का नाम, अभय धर्म दिया है और उन्हें खरतरगच्छीय जिनभद्रसूरि संतानीय तथा उपाध्याय पद पर विभूषित बताया है, यथा —

1 श्री खरतर गच्छि सहगुरु राय, गुरु श्री अभयधर्म उवझाय ॥
(तेजसार रास, चउपई—408)

2 पास नइ स्वामी सुपसाय गुरु श्री अभयधर्म उवझाय।
तासु सीस हरखइ भणिय, वाचक कुशललाभ इम भणिय॥
(जिनरक्षित जिनपालित, संधि छं० सं० 91)

3 उवझाय श्री अभयधर्म सीसह, स्तव्यु प्रभु सेवाभणी।
श्री कुशललाभ सुमति बोल बोलइ सदा सउ संपति घणि॥
(गौडी पार्श्वनाथ, स्तवन—61)

अभयधर्म की गुरु परम्परा पर प्रकाश सं० 1575 वि० में लिखित 'विपाक सूत्र' नामक धार्मिक रचना से पड़ता है। इसके अनुसार यह परम्परा निम्न प्रकार बनती है—

जिनभद्रसूरि—महोपाध्याय सिद्धान्त रुचि—वाचक विजय सोम गणि—नागकुमार गणि (राजवाचनाचार्य) (1) अभयधर्म (2) जयधर्म।

अभयधर्म और जयधर्म ने सं० 1575 में संखवाल गोत्रीय शाह भाखर की पुत्री श्रीमती अरधू (श्राविका) के द्वारा विहरते समय उक्त विपाक सूत्र की एक प्रति लिखकर पढ़ी थी। सं० 1611 में वाचक हंससार गणि ने इस ग्रंथ को स्ववाचनार्थ प्राप्त किया और सं० 1615 में इस पुष्पिका में आंशिक विस्तार करते हुए अभयधर्म का अपर नाम अभयदेवाचार्य भी लिखा है। सं० 1575 में अभयधर्म और जयधर्म ने कुशललाभ का कोई नामोल्लेख नहीं किया है, अतः स्पष्ट है कि उस समय तक कुशललाभ ने इनका शिष्यत्व ग्रहण नहीं किया था। उनका जन्म भी उस समय तक नहीं हुआ होगा।

कुशललाभ की प्रारंभिक शिक्षा कहाँ सम्पन्न हुई होगी, यह अनुमान लगाना कठिन है, पर यह अनुमान तो सहज ही लगाया जा सकता है कि कुशललाभ की धार्मिक और साहित्यिक शिक्षा उनके गुरु के सान्निध्य में ही हुई होगी। अपनी अंतिम अवस्था तक कुशललाभ वाचक पदवी से ही विभूषित रहे, उससे ऊपर उठकर उपाध्याय या महोपाध्याय के पद को प्राप्त नहीं कर सके। कुशललाभ के गुरु अभयधर्म और काकागुरु जयधर्म द्वारा प्रतिलिपित 'विपाक सूत्र' की प्रति में उनके गुरु नागकुमार गणि को राजवाचनाचार्य की उपाधि से विभूषित कहा गया

है। यह पद मात्र सम्मानजनक उपाधि थी, जो राज्य द्वारा मान्यता का प्रतीक हो सकती है।

वे एक योग्य गुरु के योग्य शिष्य, उत्कृष्ट कोटि के विद्वान और स्वयं भी एक सुयोग्य गुरु थे। 'माधवानल कामकन्दला चौपई', 'ढोलामारवणी री चौपई' और 'पिंगल शिरोमणि' में स्पष्टतः वह स्वयं को जैसलमेर के राजकुमार और कालान्तर में रावल उपाधि धारी हरराज के गुरु के रूप में व्यक्त करते हैं। इससे भी यह प्रमाणित होता है कि वे भी राज्य द्वारा सम्मानप्राप्त यति थे। उक्त ग्रंथों की रचना इन्होंने राज्याश्रय में ही रह कर की थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि आत्मकल्याण और धर्म प्रचार की भावना से प्रेरित होकर, उन्होंने स्वगुरु के आदेशानुसार, अथवा जैन तीर्थों की पवित्रता से आकर्षित होकर 'जिनपालित जिनरक्षित रास, 'पार्श्वनाथ दशभवस्तवन,' 'अगडदत्त रास,' 'भीमसेन हंसराज चौपई,' 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' 'नवकार छन्द,' आदि की रचना धर्म प्रचार हेतु गुजरात आदि में प्रवास काल में की थी। इनका उद्देश्य सदाचार संप्रेरित जीवन यापन पर बल देना रहा है। 'महामाई दुर्गासातसी' और 'जगदम्बा छन्द' की रचना का उद्देश्य, देश में बढ़ते मुस्लिम प्रभाव के विरुद्ध शक्तिपूजक राजपूत जाति के आह्वान के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता, जिसके लिए साधु-संत सदा से प्रयत्नशील रहे हैं।

धार्मिक ग्रंथों के पठन पाठन की परम्परा के साथ-साथ उन्होंने छन्दशास्त्र, कामशास्त्र, संगीतशास्त्र, और लोकसाहित्य का भी अध्ययन किया था। उनके द्वारा प्रणीत साहित्य में इन विषयों के गहन अध्ययन के पुष्कल प्रमाण उपलब्ध हैं। जैन साधुओं की चर्या के अनुसार कुशललाभ ने राजस्थान, मालवा, गुजरात, आदि के अनेक स्थानों की यात्राएँ की होंगी, पर जैसलमेर से उनका लगाव बहुत अधिक रहा। कुशललाभ के साहित्य के अध्ययन से उनके बहुमुखी अनुभव और ज्ञान की जानकारी मिलती है। शत्रुंजय यात्रा स्तवन' से उनके भौगोलिक ज्ञान का परिचय मिलता है तो साथ ही इस बात की जानकारी भी मिलती है कि उनको सामन्ती शिष्टाचार, और प्रादेशिक इतिहास की भी जानकारी थी। 'माधवानल कामकन्दला चौपई,' 'ढोला मारू चौपइ' अगडदत्त रास,' 'भीमसेन हंसराज चौपई,' आदि रचनाएँ इस प्रकार की जानकारी से भरी पड़ी हैं। उन्हें शकुन शास्त्र, तथा विभिन्न पर्वोत्सवों में भी विशेष रुचि थी। संगीत में उनकी दक्षता का प्रमाण उनके द्वारा विरचित स्तोत्र, छंद और गीत शीर्षक लघु रचनाओं तथा 'भीमसेन हंसराज चौपई' में प्रयुक्त शास्त्रीय रागों में निबद्ध ढालों से मिलता है—

कुशललाभ ने जिन कथाओं और विषयों को आधार बनाकर अपने साहित्य की रचना की है, उन्हीं कथाओं और विषयों को आधार बनाकर सुदीर्घकाल से धर्मोपदेशक और कवि अपने साहित्य की संरचना करते रहे थे। कुशललाभ ने इन

सर्वथा पूरा लाभ अपनी कृतियों की सरचना म लिया है। यह उनके सुदीर्घकालीन स्वाध्याय की प्रवृत्ति का ज्वलत प्रमाण है। पिंगल शास्त्र जैसे दुरूह विषय के ज्ञान के लिए भी उन्हें कितनी साधना करनी पडी होगी, यह उनकी रचना 'पिंगल शिरोमणि' से पता चलता है। इस रचना मे उन्होंने अपने से पूर्व के, संस्कृत प्राकृतादि छद शास्त्रीय ग्रन्थो के प्रणेता, अनेक विद्वानो की नामावली प्रस्तुत की है जिनका सम्यक एव सूक्ष्म अध्ययन उन्होंने किया था।

कुशललाभ द्वारा सृजित और सपादित अब तक अठारह रचनाएँ प्रकाश म आई हैं जिनका रचनाकाल स० 1616 म स० 1648 तक 32 वर्षों की अवधि म विभाजित है। श्री पुण्यविजय जी के उपासरे म कुशललाभ की एक और रचना ज्ञान दीप' की प्राप्ति का उल्लेख श्री अगरचद नाहटा ने मणिधारी श्री जिनचन्द्र सूरि अष्टम शताब्दी स्मृति ग्रन्थ (द्वितीय खड) मे प्रकाशित अपने लेख मे किया था। उक्त उपलब्ध रचनाएँ निम्नांकित हैं?—

1 माधवानल कामकदला चौपई (स० 1616 वि०)
2 ढोलामारू चौपई (स० 1617)
3 जिनपालित जिनरक्षित रास (स० 1621)
4 तेज सार रास (स० 1624)
5 अगडदत्त रास (स० 1625)
6 पिंगल शिरोमणि (स० 1635)
7 स्तभन पार्श्वनाथ स्तवन (स० 1638)
8 भीमसेन राजहस चौपई (स० 1643)
9 शत्रुंजय तीर्थयात्रा स्तवन (स० 1644)
10 गुण-सुन्दरी चौपई (स० 1648)
11 नवकार छन्द
12 गौडी पार्श्वनाथ स्तवन
13 श्री पूज्य-वाहण गीत
14 पार्श्वनाथ दशभव स्तवन
15 महामाई दुर्गा सातसी
16 भवानी छद अथवा जगदम्बा छद
17 स्थूलिभद्र छत्तीसी
18 कवित्त सवया।

3
काव्य रूप और नामकरण

कुशललाभ की रचनाओ का काव्य स्वरूप और विषय की दृष्टि से वर्गीकरण किया जा सकता है। काव्य स्वरूप की दृष्टि स कथा काव्य, छद काव्य और स्फुट काव्य म तथा विषय की दृष्टि से आख्यानक जन भक्तिमूलक, पौराणिक, और काव्य शास्त्र विषयक विभागा म विभाजित किया जा सकता है। आख्यानक काव्यो को पुन लौकिक, पौराणिक और धार्मिक आख्यानो म बाँटा जा सकता है। लोकाख्यान ग्रन्थो मे माधवानल काम कदला चोपई, और 'ढोला मारवणी चोपई' तथा पौराणिक आख्यानको म 'दुर्गा सातसी' को परिगणित किया जा सकता है। शेष सभी आख्यान जैन सम्प्रदाय से सबधित धर्माख्यान है।

'पिंगल शिरामणि' म दृष्टा त रूप से प्रस्तुत राम कथा के प्रसगो को मूल ग्रन्थ से अलग कर स्वतन्त्र रचना के समान किसी वग विशेष मे रखना उचित नही है। पिंगल शिरोमणि' म छन्द शास्त्र के सैद्धान्तिक विवेचन के साथ अलकार और अभिधान माला आदि का भी स्थान दिया गया है।

'दुर्गा सातसी' मार्कण्डेय पुराणान्तगत 'दुर्गा सप्तशती' की कथा के आधार पर सामान्य अन्तर के साथ विरचित कथा काव्य है। कवित्त, सवया और भवानी छन्द जैसी रचनाओ को स्फुट रचनाओ मे परिगणित किया जाना चाहिए। शेष सभी जैन धम विषयक स्तुतियाँ और स्फुट रचनाएँ हैं।

नामकरण के आधार पर कुशललाभ की कृतियो को निम्नाकित वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—

छन्दगत

राजस्थानी साहित्य म छन्द विशेष के नाम पर भी रचना के नामकरण की पद्धति रही है। दूहा, चोपई, वेलि, नीसाणी, वचनिका, झूलणा, सोरठा आदि कुछ ऐस ही छन्द हैं, जिनके आधार पर विरचित अनक रचनाएँ मिलती हैं 'ढोला मारू रा दूहा,' 'ढाढी बादर री नीसाणी,' 'मार्नासह रा झूलणा' और 'जेठव रा सोरठा' सज्ञक रचनाए इसी कोटि की रचनाएँ हैं।

पिंगल छन्दा के नाम पर रचना का नामकरण करने की परिपाटी विक्रम की

तेरहवी शताब्दी मे प्रारम्भ हुई मानी जाती है। उस काल मे विरचित 'सुभद्रा सती चोपई' का स्थान इस प्रकार की रचनाओ मे सर्वप्रथम रखा जा सकता है। तदुपरान्त इस प्रकार की रचनाओ का प्राचुर्य होता गया। चौदहवी शताब्दी मे पद्मावती चोपई' और गुणवती चोपई' की रचना हुई, पन्द्रहवी शताब्दी मे 'ज्ञान पचमी चोपई', नवतत्त्वविध चोपई', गौतम पृच्छा चोपई', 'चिहुगति चोपई' और मगल कलश चोपई' का प्रणयन हुआ।

कुशललाभ ने चोपई सज्ञक कृतियो की रचना इसी परम्परा मे की है। इससे इस विधा की तत्कालीन लोकप्रियता का पता चलता है, जो जैन लेखको को विशेष प्रिय थी।

जिस समय जैन लेखक चोपई मे रचना कर रहे थे, उसी समय पूर्वी हिन्दी मे प्रेमाख्यानो का प्रणयन करने वाले मुसलमान कवियो ने भी चोपई को काव्य प्रणयन का आधार बनाया। दाऊद की चन्दायन', कुतुबन की 'मृगावती', मझन की 'मधुमालती', जायसी का 'पद्मावत' और कन्हावत' आदि अनेक रचनाए इसी छन्द मे रची गयी।

'छन्द'—शब्दान्तक प्रशस्ति रचनाएँ

'छन्द' भी राजस्थानी काव्य की एक विधा है। इस शब्द का प्रयोग प्राय स्तुति परक स्फुट काव्यो के लिए ही होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक सूक्तो या मन्त्रो के लिए प्रयुक्त 'छान्दस्' की ही परम्परा मे राजस्थानी काव्य मे इस प्रकार की कविता का यह नाम रखा गया जो अब तक प्रचलित चला आ रहा है। इसके बाह्य परिवेश मे अवश्य ही वदिक छन्दस से अन्तर हो सकता है, पर जहाँ तक इसमे निहित भावो का प्रश्न है, उनमे कोई अन्तर नही दिखाई देता।

मध्य कालीन राजस्थानी साहित्य मे ऐसी असख्य लघु या लम्बी स्फुट कविताओ का उल्लेख मिलता है, जिन्हे छन्द नाम से अभिहित किया गया है और जो सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक अथवा दार्शनिक सभी दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण हैं।

देवी देवताओ की स्तुति मे विरचित छन्द मुख्यत गणेश महादेव, भैरव, क्षेत्रपाल, भवानी, चामुडा जगदम्बा आदि मातृकाओं, गोरखनाथ तथा सूर्य शनिश्चरादि नवग्रहो से सम्बन्धित मिलते हैं। जैन कवियो ने छन्दो की रचना पार्श्वनाथ, ऋषभदेव, भरत बाहुबलि, दादा जिन कुशल सूरि जैसे तीर्थंकरो या धर्मप्रचारको की स्तुति मे रचे हैं। सर्वानन्द (14वी शताब्दी), मेरुनन्दन (15वीं शताब्दी), हीराणन्द (15वीं 16वी शताब्दी), सहज सुन्दर (1562 वि०), लावण्य समय (1585 वि०) जैसे कुशललाभ से पूववर्ती कवियो ने और इसी प्रकार केशव, हेमरतन, समय-सुन्दर, हेम, चेतन, समयसार, काह्न प्रभृति परवर्ती

अनेक कवियो ने छन्दो की रचना की है।

जनेतर लोक देवताओ की स्तुति मे भी अनेक कवियो ने छन्द रचे हैं। जालू कवि कृत राव देवजी रो छन्द, बीदर, खेम सायर और अचला विरचित पश्चिमाधीस छन्द', मेहा रचित पाबूजी रा छद, और 'गोगाजी रा छन्द' इसी कोटि की रचनाएँ है। शौयपूर्ण कार्यों की प्रशसा मे विरचित छदो मे बीठू सूजा (1534 1541 ई०) कृत 'राव जयतसी रो पाघडी छद', श्रीधर रचित 'रणमल्ल छन्द' (1455 वि०), वोदड मोड कृत 'महाराव रायधण जी रो छद' प्रसिद्ध है। प्राचीनतम छन्द जो अब तक प्रकाश म आया है—वह है सर्वाणद कृत 'वस्तुपाल तजपाल छद' (14वी शती) जो आबू पवत पर देलवाडा के प्रसिद्ध जन मदिर का निर्माण करन वाले गुजरात के प्रधान मत्री वस्तुपाल और तजपाल की प्रशसा म रचा गया था।

कुशललाभ ने इसी परम्परा म नवकार छद, भवानी छद या जगदबा छद, तथा गौडी पार्श्वनाथ छद की रचना की है।

पद सख्यापरक

कुशललाभ न काव्य म विरचित पदो की सख्या के आधार पर भी अपनी रचनाओ के नाम रखे हैं। स्थूलिभद्र छत्तीसी' और 'महामाई दुर्गा सातसी' ऐसी ही सख्यापरक रचनाएँ है। 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' मे गुरु स्थूलिभद्र की कीर्ति का गान किया गया है। छत्तीस छन्दात्मक काव्य होने के कारण इसके नाम के साथ छत्तीसी' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'महामाई दुर्गा सातसी' भी छन्दपरक रचना ही है। 366 छदो मे रचित इस रचना मे महिष मर्दिनी मा दुर्गा की कीर्ति-गाथा गायी गयी है। इस रचना के साथ सातसी' शब्द का योग मात्र मूल की अनुकरण की प्रवृत्ति के कारण किया गया है। इसका नाम मूलत 'दुर्गा सप्तशती' ही है।

स्तुति, स्तवनपरक रचनाए

जैन कवियो ने भक्तिपरक रचनाओ को छदो के समान ही स्तुति, थुई, स्तवन आदि नाम भी दिये हैं। सैकडो की सख्या मे ऐसी रचनाएँ ग्र थागारो म उपलब्ध हैं। कुशललाभ ने इसी परम्परा मे 'पार्श्वनाथ दशभव स्तवन , 'स्तभन पार्श्वनाथ स्तवन 'शत्रुजय यात्रा स्तवन की रचना की है। 'श्री पूज्यवाहण गीत' को भी हम इसी श्रेणी मे रख सकते हैं।

राससज्ञक रचनाएँ

रास या रासक का उल्लेख सस्कृत और अपभ्रश साहित्य मे प्रचुरता से मिलता

है। भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र मे इसे 'क्रीडनीयक' कहा है—"क्रीडनीयक
मिच्छायो दृश्य श्रव्य च यद भवेत" (प्रथम अध्याय)। भास ने इसके समानार्थक
'हल्लीसक' शब्द का उल्लेख किया है। हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, धनंजय के
'दशरूपक' तथा भोज के 'सरस्वती कण्ठाभरण' एवं 'शृंगार प्रकाश' में भी रास
का उल्लेख आया है। इन सभी उल्लेखों मे रास को क्रीडाप्रधान अथवा नृत्यात्मक
ही बताया है। बाणभट्ट ने हर्ष चरित में जन्मोत्सव के अवसर पर आवन मनक
रास मंडलो का उल्लेख किया है—साथ ही अश्लील रासक पद गाए जाने की
बात भी कही है।[1] श्रीमद्भागवत में रास नृत्य के साथ गेयता का वर्णन है (दशम
स्कंध अध्याय 33 2 ३ 6, 11, 8 10)। कर्पूर मंजरी' (4/10) में दंड रासु,
तालरासु लगुडरास आदि रास के विभिन्न प्रकारों की चर्चा की गयी है।
वात्स्यायन के कामसूत्र वाग्भट्ट कृत 'काव्यानुशासन तथा हेमचन्द्रकृत काव्यानु
शासन' मे भी रास मे गान तत्त्व की विद्यमानता के प्रमाण प्राप्त हैं।

हेमचन्द्र ने रासक को उपरूपक मानकर इसे श्रव्य और दृश्य दोनों ही भेदों
से समन्वित कहा है। उन्होंने इन उपरूपकों मे उद्धत मसृण और मिश्र नामक
तीन भेद बताए हैं। रासक एक उद्धतप्रधान गेय उपरूपक गिना गया है। डा॰
दशरथ शर्मा के मतानुसार चर्चरी और रास नृत्यों के साथ देश्य भाषाओं की
गीतियाँ भी गायी जाने लगी जो धीरे धीरे 'चर्चरी' और 'रास' नाम से प्रचलित
हो चली। कालान्तर में यही गीतियाँ जैन धर्मावलम्बियों के उपदेशात्मक धार्मिक
गीतों की वाहन बनी जिनमें गेय रस कम होता गया और श्रव्य काव्य रह गया।
नृत्य से इसका संबंध विच्छिन्न हो गया।[3]

विरहांक और स्वयम्भू ने रासक और रासाबंध की व्याख्या की है। विरहांक
ने 'वृत्त जाति समुच्चय' मे रासक में विस्तारितक और द्विपदी छन्दों का प्रयोग
और विदारी से समापन बताते हुए आगे रासक को अडिल्लों दुवहों, मात्राओं,
रड्डाओं और ढोसाओं में निर्मित कहा है। स्वयम्भू ने स्वयम्भछंदस' में रासाबंध को
घत्ताओं पद्धडियों छड्डणियों, तथा अन्य सुन्दर छंदों से बना बताया है। उन्होंने रासा
नामक एक पृथक छन्द की परिभाषा भी दी है। संभवत रास मे गान तत्त्व की
निरन्तर वृद्धि होते रहने से विशिष्ट गान को ही रासा छन्द कहा गया है।[4]

परवर्ती साहित्य में इसी रासा छंद के प्रयोग की प्रमुखता के कारण रचनाओं
का नामकरण भी उसी पर होने लगा, जिसका प्रचलन परवर्ती साहित्य में प्रचुरता
से मिलता है। कालान्तर मे रास, रासक या रासो संज्ञक रचनाओं के विषय का

1 हर्ष चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन डा वासुदेवशरण अग्रवाल पृ॰ 33 67
2 हिन्दी साहित्य का आदिकाल डा हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ॰ 60
3 रासो काव्य का क्रमिक विकास साहित्य सन्देश जनाई 1951 ई॰
4 सन्देश रासक—भूमिका विश्वनाथ त्रिपाठी पृ॰ 64 65

भी विकास होने लगा। प्रेम, धर्म, उपदेश, वीरता, चरित्र, गाथा आदि विषयक रास और रासो लिखे जाने लगे। शृगार, प्रेम आदि कथाओ वाले लौकिक काव्यो को 'रास' की सज्ञा दी गयी और ऐतिहासिक और वीरता परक रास रासो कहे जाने लगे। कविराज विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण' मे 'नाट्य रासक' और 'रासक' दो उपरूपक बताये हैं। 'नाट्य दर्पण' मे रासक की तथा 'भाव प्रकाश' मे नाट्य रासक की परिभाषाएँ मिलती है। रासक मे सोलह या अठारह नायिकाओ द्वारा पिंडी-विन्यास मे नाचने की बात कही गयी है।[1] डॉ० कीथ ने नाट्य रासक को समूह नृत्य और ताल नृत्य कहा है।

धीरे धीरे इन गेय रूपको और नाट्य रासको के क्रमिक विकास मे कथा तत्व का समावेश होने लगा था। नृत्य के स्थान पर गान की प्रधानता के साथ साथ कथा-तत्त्व की बहुलता होती चली गयी। जैन लेखको ने इसका लाभ उठाकर लोक प्रचलित शृगार परक कथाओ के स्थान पर उपदेश और वैराग्यमूलक कथाओ का रासो मे गुम्फन किया। उनमे विविध प्रकार के छन्दो का प्रयोग भी होने लगा। बारहवी शताब्दी के बाद ऐसे कथा प्रधान रासो की सख्या बढती गयी।[2]

रास की आभ्यन्तरिक रचना का परीक्षण करने पर यह धारणा बनती है कि चचरी, दूहा फागु रास आदि नामो से प्राप्त रचनाओ मे केवल छन्द की प्रधानता ही रहती है, अन्य किसी प्रकार का तात्त्विक अन्तर नही है। रास' रचना के प्रारम्भ मे भी इष्टदेव की स्तुति और अन्त मे सुनने या पढने वालो के लिए मगल कामना का उल्लेख रहता है। जन या जनेतर, प्राय सभी रासो मे ये लक्षण समान रूप से पाये जाते हैं।

राजस्थानी साहित्य मे सर्वप्रथम रास नरपति नाल्ह रचित 'बीसलदेव रास' है जिसकी रचना सवत 1212 मे की गयी थी। इसी क्रम मे शालिभद्र सूरि ने स० 1241 मे 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' और बुद्धिरास' की रचना की। बुद्धिरास की परम्परा मे सार शिक्षा' तथा 'हित शिक्षा' जैसे बुद्धिपरक नैतिक शिक्षा विषयक रासो की रचना की गयी। स० 1257 मे आसिगु ने जीवदया रास' और 'चन्दन बाला रास' रचा। 'आबू रास' मे अमात्य विमल और वस्तुपाल तेजपाल द्वारा आबू मे जैन मन्दिरो के निर्माण का वर्णन है। स० 1313 के आस पास लक्ष्मी तिलक ने जिनेश्वरी सूरि विवाह वर्णन रास की, अवदेव सूरि ने 'समरारास की और पूर्णिमागच्छीय शालिभद्र सूरि ने 'पाडव चरित रासु' की सरचना की। इसी परम्परा मे कुशललाभ ने 'अगडदत्त रास' और जिन

1 नाट्यदर्पण बडोदा पृ० 214 15
2 द सस्कृत ड्रामा पृ० 351
3 सदेश रासक की भूमिका, डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी एव विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी पृ० 64

पालित जिनरक्षित रास', जिसे 'सघिगाथा' नाम भी दिया गया है, की रचना की।

नरपति नाल्ह ने 'वीसलदेव रास' को रसायण की सज्ञा भी अनेक स्थलो पर दी है। इस दृष्टि से रसायण रास का ही पर्याय निश्चित होता है। रसायण का अर्थ श्रृगार प्रेमादि से रससिक्त प्रसग से ही ग्रहण करना चाहिए। रास शब्द के मूल मे भी यही भावना निहित है। जैन साहित्य मे उपदेश रसायन रास' का भी उल्लेख मिलता है।[1] इसका अर्थ 'उपदेशामृत किया जा सकता है। कुशललाभ के 'रास' सज्ञक का यो को भी इसी दृष्टि से रास काव्यो की प्राचीन परम्परा मे उपदेश काव्य ही माना जाना चाहिए।

1 सदेश रासक—भूमिका पृ० 66

4
काव्यो तथा कथानको की परपरा और उनका सार-सक्षेप

माधवानल कामकदला

जैसा कि पूव म बताया गया है कुशललाभ की ज्ञात रचनाओ मे 'माधवानल कामकदला' कालक्रम की दृष्टि से सवप्रथम रचना है। इस काव्य की प्रौढता को देखत हुए यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कुशललाभ न इस रचना से पूव भी किसी रचना का प्रणयन अवश्य ही किया होगा। इस काय का आख्यान भारतीय आख्यानो मे सुप्रसिद्ध रहा है। 'सिंहासन द्वात्रिंशिका , 'बेताल पचविंशतिका', 'शुक सप्ततिका', 'हितोपदेश', पचतत्र' 'कथा सरित्सागर', बृहत्कथामजरी', 'वसुदेव हिण्डी', 'जातक कथा अवदान', 'आख्यान यामिनी' आदि प्राचीन आख्यानक ग्रथ अधिकाश परवर्ती कथाओ के मूल स्रोत रहे हैं। वैदिक साहित्य म निहित प्रतीक कथाओ से प्रारम्भ कर प्राय सभी भारतीय भाषाओ के साहित्य में कथाओ के लक्षण मिलते हैं।

जैनागमों मे 'जयधम्म कहा', उवासगदशाओ विपाक सूत्र', सूय गडांग' आदि समग्र रूप स कथात्मक सग्रह हैं। 'भगवती ठाणाग' और सूय गडाग' कथाओं की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। 'समराइच्च कहा' 'तरगवती', पउमचरिउ,' 'भविसयत्त कहा', आदि जैन साहित्य के सुप्रसिद्ध कथा ग्रथ है। जैन लेखको ने धम प्रचार की दृष्टि से कथाओ का आश्रय लिया और कथाओ के वृहदाकार सकलन तैयार किये। ऐसे अनेक कथा कोष आज उपलब्ध हैं। उनमे कतिपय इस प्रकार हैं—

हेमाचाय कथा सग्रह', आनन्द सुन्दर का कथा कोष,' सवसुन्दर का कथा सग्रह', श्री विजयचन्द्र, दवभद्र, जिनेश्वर सूरि के कथा कोष,' हरिषेण का कथा महोदधि', उत्तमर्षि का कथा रत्नाकर', धमघोष का कथाणव आदि-आदि। परवर्ती मध्य युगीन जैन लेखको ने प्राय इन्ही ग्र थो को आधार बनाकर अपनी कथाओ का वितान बुना है।

माधवानल कामकन्दला' की कथा का मूल स्रोत सिंहासन द्वात्रिंशिका' की

ग्वरीसयी कथा है, जिसे अगुरोधवती पुत्तली ने सुनाया है। इस कथा के आधार पर संस्कृत अपभ्रंश हिन्दी ब्रज, राजस्थानी, गुजराती, मराठी आदि अनेक भाषाओं में कवियों ने अपनी कल्पना के योग से कथा को अनेक नव्य स्वरूप प्रदान कर दिये हैं।

पश्चिमी भारत में यह कथा बहुत प्रसिद्ध रही है। स० 1300 में आनन्दधर ने संस्कृत-अपभ्रंश में 'कामकंदलाख्यान' या 'माधवानलाख्यानम्' की रचना की। कनकसुन्दर ने भी माधवानल नाटक की रचना इसी आधार पर की। इनके उपरान्त इस कथा के आधार पर साहित्य प्रणयन का जो क्रम चला, वह निम्न प्रकार है—

1 बालक कवि प्रणीत माधवानल कामकंदला भाषा बंध (स० 1583 84 वि०)।
2 गणपति कृत माधवानल 'कामकंदला प्रबन्ध' या 'कामकला दोग्धक', (अपभ्रंश मिश्रित मरु गुर्जर स० 1584)
3 माधव शर्मा कृत माधवानल काम कन्दला रस विलास' (ब्रज भाषा स० 1600 वि०)
4 अज्ञात कृत 'माधवानल कामकंदला' (अपभ्रंश ब्रज डिंगल मिश्रित संस्कृत स० 1600 वि० के लगभग)

कुशललाभ के उपरान्त भी इस कथा को माध्यम बनाकर ब्रज भाषा, बुन्देल खड़ी हिन्दी उर्दू, फारसी, संस्कृत एवं राजस्थानी आदि भाषाओं में काव्य या नाटक तक लिखे जाते रहे।

कुशललाभ ने माधवानल कामकंदला चौपई की रचना अपने प्रिय शिष्य राजकुमार हरराज के मनोरंजनार्थ स० 1616 में की थी। उसने भी गणपति कायस्थ के समान मूल कथा में तनिक परिवर्तन करते हुए उसमें माधव और कंदला के पूर्व जन्म के प्रसंग की संयोजना की है। इसके रचनाकाल के विषय में विभिन्न प्रतियों में विभिन्न उल्लेख मिलते हैं। कतिपय शोधक स० 1613 में इसकी रचना हुई मानते हैं। आनन्द काव्य महोदधि में प्रकाशित प्रति में और लेखक के संग्रह में उपलब्ध हस्तलिखित प्रति में रचना का काल फाल्गुन शुक्ला 13 दिया गया है। इस विषयक जो दोहा लेखक के संग्रह की प्रति में मिलता है, वह इस प्रकार है—

संवत सोल सतोतरइ जसलमेर मझारि।
फागुण सुदि तेरसि दिवसि विरची आदितवार ॥ 550

(लेखक के निजी संग्रह में)

अधिकांश हस्तलिखित प्रतियों में रचना तिथि स० 1616 फाल्गुन सुदि 13 रविवार विषयक उल्लेख ही मिलते हैं। वर्ष, मास, तिथि और वार की दृष्टि से

इसका मेल भारतीय तिथिपत्र (Indian Ephemeries) से बैठ जाता है— अतः निःसंकोच हम इसी तिथि को उक्त कृति का रचना संवत् रविवार कर सकते हैं।

कथासार

राजा इन्द्र की रूपगर्विता अप्सरा जयंति को इन्द्र-सभा में अभिनीत नाटक में अनुपस्थिति के कारण कुपित होकर इन्द्र ने शाप दे दिया। परिणामस्वरूप वह पृथ्वी लोक की पुष्पावती नगरी में शिलारूप में अवतरित हुई। उसका उद्धार अब इन्द्र के वचनानुसार माधव नामक ब्राह्मण कुमार के द्वारा पत्नी रूप में वरण से ही हो सकता था।

एक बार कैलाश पर्वत पर समाधिस्थ भगवान शंकर के मन में उद्भूत कामेच्छा के परिणामस्वरूप उनके रेतस् का स्खलन हो गया। विष्णु ने इससे पृथ्वीलोक में सम्भावित उत्पातों के निवारणार्थ स्खलित रेतस् को अंजलि में ग्रहण कर गंगा नदी में स्थित एक कमल नाल में सुरक्षित रख दिया। इस कमलनाल से रेतस् के परिणामस्वरूप एक तेजस्वी बालक का जन्म हुआ।

गंगा तटवर्ती पुष्पावती नगरी के राजा गोविन्दचन्द्र का संततिहीन पुरोहित स्वप्न में भगवान शिव से प्रेरणा पाकर सपत्नीक गंगा तट पर गया और बालक को अपने घर ले आया। बालक का नाम 'माधवानल' रखा गया। बालक बड़ा तेजस्वी, रूपवान, प्रतिभाशाली और मेधावी था। बारह वर्ष की अवस्था में नदी-तट पर क्रीडारत माधव के मित्रों ने शिला रूप में शापित अप्सरा जयंति से उसका विवाह करा दिया। इन्द्र द्वारा प्रदत्त वरदान के अनुसार जयंति शाप-मुक्त होकर उड़कर इन्द्रलोक में पहुँच गयी।

माधव द्वारा उपकृत और विवाहिता जयंति माधव के विरह में व्याकुल रहने लगी और छिप छिपकर माधव से मिलन के लिए पृथ्वीलोक में आने लगी। भेद खुल जाने पर शाप के भय से जयंति ने जब माधव से मिलना बन्द कर दिया तो माधव स्वयं इन्द्रपुरी पहुंचने लगा।

एक दिन इन्द्र सभा में आयोजित नाटक हेतु प्रस्थान के समय जयंति ने माधव को 'भ्रमर' बनाकर अपनी कंचुकी में छिपा लिया। नृत्य करते समय जयन्ति की मन स्थिति से इन्द्र को जब जयंति की कंचुकी में भ्रमर रूप माधव की उपस्थिति का भान हुआ तो उसने पुनः जयन्ति को पृथ्वीलोक में वेश्या के घर जन्म लेने का शाप दिया। फलस्वरूप जयंति ने राजा कामसेन की नगरी कामावती में कामा नामक राज वेश्या की पुत्री के रूप में जन्म लिया। वेश्या ने उसका नाम काम कंदला रखा।

इधर विरहातुर माधव के अतिशय रूप सौन्दर्य और वीणावादन से आकर्षित पुष्पावती नगरी की युवतियाँ और अन्तःपुर की राज महिषियाँ कामासक्त होने लगीं। नागरिकों द्वारा शिकायत किये जाने पर राजा गोविन्दचन्द्र ने माधव को देशनिकाला दे दिया। पुष्पावती से निष्कासित माधव इतस्ततः भ्रमण करता कामावती नगरी में आ पहुँचा। वह राजा कामसेन की राजसभा में चले जा रहे 'इन्द्र महोत्सव नाटक' के संगीत को राजद्वार पर खड़ा होकर सुनने लगा। कला निपुण माधव संगीत में विसंगतियों को सुनकर सिर धुनने लगा। कारण पूछे जाने पर उसने राजसभा में पूर्वाभिमुख बैठे अंगुष्ठ विहीन पखावजी के वादन में स्वरभंग की बात बताई। जब यह बात राजा तक पहुँचायी गयी तो उसने माधव को ससम्मान राजसभा में आमन्त्रित किया और प्रभूत वस्त्राभूषण देकर समादृत किया। कामकन्दला और माधव ने राजसभा में एक दूसरे को देखा।

नृत्यरत कंदला द्वारा अपने कुच पर आ बैठे भ्रमर को पवन प्रयास के बल पर उड़ाते देख माधव की स्मृति लौट आयी। कन्दला के कौशल पर प्रसन्न होकर उसने राजा द्वारा पुरस्कार में दी गयी समस्त भेंट कंदला पर न्यौछावर कर दी। राजा ने इसे अपना अपमान समझकर उसे दंडित करना चाहा। ब्राह्मण होने के कारण अवध्य जानकर उसने माधव को राज्य से निकाल दिया। एक रात कंदला के साथ रहकर वह कामावती छोड़कर उज्जैन चला आया।

कंदला के विरह में संतप्त माधव ने उज्जैन स्थित महाकाल शिव के मन्दिर में एक विरह गाथा लिखकर छोड़ दी। सम्राट विक्रमादित्य ने उसे पढ़ा तो अत्यन्त दुःखी हुआ। भोग विलासिनी नामक वेश्या की सहायता से राजा विक्रमादित्य ने गाथा-लेखक माधव की खोज करवायी और उसकी व्यथा का कारण ज्ञात किया।

माधव के प्रेम की परीक्षा लेने की दृष्टि से राजा ने उसको एक से एक बढ़कर रूप सौन्दर्य गर्विता कामिनियाँ देने का प्रलोभन दिया लेकिन कंदला के विरह में आतुर माधव ने उनकी उपेक्षा कर दी। प्रेम प्रसंग में माधव को खरा मानकर विक्रमादित्य ने कामावती नगरी पर चढ़ाई की और कामसेन को पराजित कर कामकंदला को प्राप्त किया।

कंदला के प्रेम की परीक्षा करने के लिए विक्रमादित्य ने उसके पास माधव की मृत्यु की मिथ्या सूचना पहुँचायी जिसे सुनते ही कन्दला के प्राण-पखेरू उड़ गये। कंदला की मृत्यु की सूचना पाने पर यही अवस्था माधव की भी हुई।

विक्रमादित्य ने अपने मित्र बेताल की सहायता से पाताल लोक से अमृत प्राप्त कर दोनों को पुनर्जीवित किया। विक्रमादित्य के आदेश से कामसेन ने कंदला माधव को भेंट कर दी। इस प्रकार अपनी प्रियतमा को प्राप्त कर माधव पुष्पावती नगरी लौट आया।

ढोला मारवणी चौपई

'ढोला मारवणी चौपई' की कथा का मूल लोक-कथाओ मे निहित है। यह कथा कितनी पुरानी है यह निश्चय कर पाना कठिन है लेकिन मुक्तक दोहो के रूप मे और लोकवार्ता के रूप मे कुशललाभ से बहुत पहले ही इसका अस्तित्व रहा होगा। एक आदर्श पति के रूप म ढोला की लोक मे प्रसिद्धि रही होगी, उसी कारण लगभग दसवी शताब्दी विक्रमी मे तो ढोला शब्द पति या नायक के अथ ही म प्रचलित हो गया था। हेमचन्द्र सूरि (1182 वि०) ने भी इस तथ्य का सकेत निम्न दोहो मे दिया है—

> ढोला सामला धण चपावण्णी,
> णाइ सुख एणरेह, कसवट्टइ दिएण्णी ॥ 8/4/330
> ढोला मइ तुहु वारिया, मा करू दीहा माणु।
> निंद्दए गमिही रत्तडी, दडवड होइ विहाणु॥ 8/4/330
> ढोल्ला एह परिहासडी अइमण कवणहिं देसि।
> हउ भिज्जउ तउ केहि तुहु, पुण अभहि रेसि ॥ 8/4/425

इसकी लोकप्रियता के प्रमाण देश के विभिन्न अचलो मे उपलब्ध इस कथा के विविध रूप हैं। भाषा भेद और जनरुचि के अनुसार कथा मे सामान्य अतर के होते हुए भी इसका पूण प्रभाव परिलक्षित होता है। राजस्थानी, व्रज भाषा अवधी, छत्तीसगढी, मालवी भोजपुरी, मथिली, हरियाणवी, पजाबी, गुजराती आदि भाषाओ और बोलियो म किसी-न किसी रूप मे इस कहानी के स्वरूप के दशन हो ही जाते है।

राजस्थानी भाषा म ही ढोला मारू कथा के अनेक गद्य पदयात्मक रूप मिलत हैं। ये हैं, विशुद्ध दोहा रूप, कुशललाभ द्वारा सपादित चौपई मिश्रित दोहा रूप, दोहो के पुट से युक्त गद्यवार्ता रूप, और दोहा चौपई मिश्रित गद्यवार्ता रूप। प्रथम दोहा रूप स कतिपय दोहो के विश्रृखलित हो जाने के कारण विखडित कथा रूप की पूर्ति के लिए कुशललाभ न स्वरचित चौपइयो का बीच बीच म सयोजन कर दूसरा रूप तैयार किया था। इन सभी रूपो मे बहुत कुछ कथा साम्य है, फिर भी उन सबम कुछ न कुछ नवीन कथा प्रसग जोडे गय मिलते हैं।

अन्य रूपा तरो मे कथान्तर इस प्रकार है—

अकाल पडने पर पिंगल के राजा की सपरिवार पुष्कर यात्रा, राज्य-सचालन का भार अपन भाई गोपालदास को सौपना, नरवरगढाधीश नल की पुत्र प्राप्ति की कामना हेतु वघेरा मे वराह तीथ का यात्रा सकल्प, ढोला और मारवणी की धात्रियो का सवाद, राजा पिंगल की चार पत्नियो के उल्लेख, ढोला मारू के विवाह हेतु धात्री का नल स परामश नल का अपने प्रधान और रानियो से परामश और गोद भराई की रस्म आदि प्रसग सवथा भिन्न हैं।

इसी प्रकार गोपालदास का संदेश घोड़ों के सौदागर का बाग में डेरा और मारू के विषय में सखियों से पृच्छा, घोड़ों की देखभाल आये नाई के द्वारा सौदागर के विषय में राजा को सूचना, रानी के द्वारा ढोला को संदेश प्रेषण, संदेशवाहकों का मालवणी द्वारा हत्या, ढाढियों द्वारा संदेश प्रेषण, ढाढियों का नरवर में कुम्हारी के भानजे की सहायता से ढोला से मिलन, ढोला द्वारा मारवणी को प्रेम-पत्र लेखन, मालवणी का षड्यंत्र, पुरोहित का पूगल भेजा जाना और उसका ढोला के सम्मुख मारू के रूप सौंदर्य, शील सतीत्व का वर्णन, ढोला द्वारा पुष्कर में ढोला मारू के विवाह से सम्बन्धित आरोपित तोरण स्तम्भों के विषय में पूछताछ, गीत सुनकर ढोला का कुएँ पर जाना और ढोला के आगमन की सूचना राजा को देना आदि तथ्य भी मूल कथा से भिन्न हैं।

ढोला मारवणी चौपई कथा सार

पूगल के राजा पिंगल ने दान ग्रहणार्थ अपने पास आये एक भाट द्वारा जालोर के राजा सामन्तसी देवड़ा की पुत्री उमादेवड़ी के अनुपम रूप सौन्दर्य का वर्णन सुनकर उससे विवाह किया। उनके एक पुत्री हुई, जिसका नाम मारवणी रखा गया। जब वह डेढ़ वर्ष की ही थी पूगल में भयंकर अकाल पड़ा। दुष्काल के प्रभाव से बचने के लिए राजा सपरिवार पुष्कर चला गया। उसी समय नलवर गढ़ का अधिपति राजा नल भी तीर्थ यात्रा में संकल्प से प्राप्त पुत्र ढोला (साल्ह कुमार) की जात देने के लिए पुष्कर आया हुआ था।

वहाँ आखेट क्रम में खरगोश का पीछा करते समय मारवणी को देखने का अवसर राजा नल को मिला। उसने अपने पुत्र ढोला के साथ मारवणी के सम्बन्ध का प्रस्ताव पिंगल के पास भेजा जो सहर्ष स्वीकार कर लिया गया। दोनों का विवाह वहीं सम्पन्न हो गया। विवाह की साक्षी स्वरूप एक शिलालेख उन्होंने पुष्कर सरोवर के तट पर स्थापित कर दिया। स्वदेश लौटते समय राजा नल ने मारू को अपने साथ ले जाने का प्रस्ताव रखा—पर अल्पायु के कारण उस समय न भेजकर पिंगल ने सात वर्ष बाद उसे भेजने का वादा किया।

निश्चित समय तक पिंगल की ओर से कोई समाचार न मिलने पर नल ने ढोला का विवाह मालवा के राजा भीम की कन्या मालवणी से कर दिया। ढोला से उसके प्रथम विवाह की घटना को गुप्त रखा गया। पर एक दिन ढोला की माँ के द्वारा मालवणी को दिये गये तानों में मारवणी की प्रशंसा को सुनकर ढोला को अपने प्रथम विवाह का ज्ञान हो गया। ढोला मारवणी से मिलने के लिए आतुर रहने लगा। ढोला की मन स्थिति को समझकर मालवणी ने पूगल से आने वाले यात्रियों का अवरोध करना प्रारम्भ कर दिया—जिससे कोई यात्री ढोला से मिल न पाये।

नलवरगढ से पूगल आये घोडो के व्यापारी से ढोला के दूसरे विवाह की बात सुनकर राजा पिंगल ने अपने पुरोहित को ढोला के पास भेजना चाहा। मारवणी भी इस तथ्य से परिचित हो चुकी थी। अत उसने याचकों के माध्यम से ढोला तक संदेश पहुँचाने का आग्रह किया। पूगल से तदनुसार याचक भेजे गये। वे भाऊ भाट के माध्यम से ढोला से मिले और मारवणी की विरह व्यथा सुनाई। ढाढियो को पुरस्कृत कर ढोला ने उन्हें शीघ्र ही पूगल पहुँचने का आश्वासन देकर लौटा दिया। साथ ही भाऊ भाट को भी मारवणी को आश्वस्त करने के लिए भेज दिया।

ढोला को मारू के विरह में दिन दिन घुलते देख मालवणी ने ढोला से सीधा इसका कारण पूछा। उसने अनेक बहाने बनाये, पर अन्त में उसे सत्य तथ्य प्रगट करना ही पड़ा। इस अप्रत्याशित आने वाले विरह की कल्पना से ही वह मूर्छित हो गई। अनेक उपायो से उसने चार मास तक ढोला को रोके रखा, पर अन्त में वह मालवणी को सोयी हुई छोड़कर पूगल के लिए निकल ही गया। मार्ग में अनेक कष्टो का सामना करते हुए वह पूगल पहुच गया।

ढोला पानी पीने के बहाने पूगल के पनघट पर उतरा। मारवणी ने उसे पहचान लिया और वह तुरन्त घर लौट आयी। ढोला के ऊँट की आवाज का पहचान कर पिंगल के रबारी ने भी राजा को ढोला के आगमन की सूचना दी। ढोला की अगवानी हेतु पिंगल अपने आदमियों के साथ कुएँ पर गया। सखियों ने मारवणी को सजाया और प्रियतम से मिलन के लिए भेजा। दोनो ने एक-दूसरे से क्षमा याचना की।

एक पक्ष पर्यन्त ससुराल में रहकर मारवणी सहित ढोला ने विदाई ली। प्रभूत धन धान्य दहेज में देकर राजा ने उन्हें विदा किया। मार्ग में पीवणे सर्प ने मारू के श्वास का अपन कर लिया। मारू के इस असामयिक निधन से संतप्त ढोला ने चिता सजाकर जल मरने का निश्चय किया। चिता सजाकर ज्योंही उसने उस पर आरोहण किया एक योगी और योगिन वहाँ आ उपस्थित हुए। योगिनी के आग्रह पर योगी ने मारवणी को पुनर्जीवित कर दिया। ढोला ने प्रसन्न होकर योगिनी को नवसर हार भेंट किया और नलवरगढ की ओर आगे बढ़ गया।

मार्ग में मारवणी के अपहरण की नीयत से आये ऊमरा सूमरा से उनका मिलन हुआ। ऊमरा सूमरा के आमन्त्रण से ढोला मद्यपान हेतु रुक गया। पीहर की डूमणी के गीतों द्वारा उद्बोधित मारू ने ऊँट को प्रताड़ित किया। ऊँट को सभालने के लिए वापस आये ढोला को मारू ने षडयन्त्र की जानकारी दी। ढोला और मारू ऊँट पर बैठकर पलायन कर गये। ऊमरा सूमरा ने उनका पीछा किया, पर असफल रहे।

ढोला सकुशल नरवर पहुँच गया। राजा नल ने उत्सव मनाया। ढोला दोनो

रानियों के साथ सुख से रहने लगा। एक दिन दोनों में अपने-अपने पीहर की विशेषताओं के प्रश्न को लेकर विवाद छिड़ गया। ढोला ने हस्तक्षेप कर इस कटु विवाद को विनोद में परिवर्तित कर दिया और इस तरह वे अनेक सुखोपभोगों को भोगते हुए सुख से जीवन यापन करने लगे।

तेजसार रास

कुशललाभ की कृतियों में 'तेजसार रास' का भी प्रमुख स्थान है। जैन ग्रन्थ भंडारों में इस रचना की अनेक प्रतियाँ उपलब्ध हैं। तपागच्छीय सहज विमल द्वारा सं० 1644 पौष शुक्ला 14 को प्रतिलिपित एक प्रति में इसे 'दीपपूजा विषये रास' संज्ञा दी गई है। श्री प्रेम सागर जैन ने इसी आधार पर इसे दीपपूजा से सम्बन्धित काव्य माना है।

कुशललाभ ने इस ग्रन्थ की रचना सं० 1624 वि० में की थी। जैन ग्रन्थ भंडारों में अनेक ऐसी प्रतियाँ भी उपलब्ध हैं, जिनमें इस ग्रन्थ की रचना सं० 1592 में बृहत्तपागच्छीय वाचक जयमंदिर के द्वारा किये जाने का भी उल्लेख है। दोनों ही संस्करणों में पूर्ण समानता है। प्रारम्भिक मंगलाचरणात्मक पद और अन्तिम प्रशस्ति में रचयिताओं के नाम, रचना स्थान, गुरुनाम, तथा गच्छ सूचक भिन्नता के अतिरिक्त कथा भाग आदि से अंत तक एक ही है। ऐसी स्थिति में रचयिता के विषय में निर्णय करने में बड़ी कठिनाई सामने आती है।

कथा स्रोत

'तेजसार रास' की कथा का आधार अवश्य ही जैन महापुराण रहा होगा। संभव है कोई प्राचीन जैन कथा भी रही हो। 'तेजसार रास' में तेजसार को उपदेश देने वाले मुनिसुव्रत स्वामी का उल्लेख जैन उत्तर पुराण में मिलता है। वे बीसवें तीर्थंकर थे। सम्भव है इसीके आधार पर कुशललाभ ने श्रावक तेजसार और विमला श्राविका की कथा का ताना बाना बुना हो।

कथा सार

बनारस के राजा वीरसेन की रानी पद्मावती ने स्वप्न में प्रज्ज्वलित दीप देखा। स्वप्न-निमित्त विद्वानों ने इस आधार पर तेजस्वी पुत्र जन्म की भविष्यवाणी की। तदनुसार रानी को पुत्र की प्राप्ति हुई जिसका नाम तेजसार रखा गया। सात वर्ष की वय में तेजसार की माता का देहान्त हो गया। राजा ने दूसरा विवाह कर लिया, जिससे उसे विक्रमसिंह नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। वह तेजसार से द्वेष करने लगा। धीरे धीरे अपने पिता के स्नेह से भी वह वंचित होने लगा। एक रात अपना अमर-खड्ग लेकर वह घर से निकल गया और कनकावती नगरी में

गगदत्त नामक ओझा के आश्रम मे अध्ययन करने लगा।

एक बार गुरु पत्नी के आदेश से वह वन म घास लेने गया हुआ था कि वहाँ मार्ग भूल गया। एक राक्षस ने उसे मारकर खाना चाहा। प्राण रक्षार्थ भागते राजकुमार ने एक योगी से दड की प्राप्ति की, जिसकी सहायता से उसने राक्षस पर प्रहार किया और अपनी रक्षा की। राक्षस ने उस दो विद्याएँ सिखाई।

जब उसे पता चला कि उनकी गुरु पत्नी एक सिकोतरी है और एक एक कर सभी विद्यार्थियो को मार डालेगी तो योगी से प्राप्त दड और राक्षस से प्राप्त विद्याओ के बल पर उसने गुरुआनी के जादुई कायकलापो से अपनी और अपने सहयोगियो की रक्षा की।

गुरु पत्नी से बचकर वन मे भाग जाने पर किसी योगी द्वारा बाँधी गयी विजयश्री नामक रूपसी राजकुमारी को उसने बधन मुक्त किया। योगी ने उसे रूप परिवतन और अदृश्य होने की विद्या सिखायी। अनेक निजधरी घटनाओ का सामना करते हुए तजसार ने विजयश्री एणामुखी पुष्पावती आदि सात राज कुमारियों की इसी प्रकार रक्षा की और उनसे विवाह किये।

अत मे व्यतरी के रूप मे आकाशचारी अपनी माँ और एणामुखी की माता से उसकी भेंट हुई। दोनो ने मिलकर एक भव्य और सम्पन्न नगर का निर्माण किया जिसका नाम तजसार के नाम पर तेजलपुर रखा गया। वह अपने शत्रु समरसेन को परास्त करके अपनी सातों रानियो के साथ वहाँ सुखपूवक रहने लगा।

कुछ समय बाद अपने पिता वीरसेन के आमत्रण पर तजसार सपरिवार बनारस लौट जाता है। वीरसेन सुव्रत स्वामी से दीक्षा लेकर राज्य तेजसार को सौंप देता है। अपनी रानियो स जमे आठ पुत्रो के वयस्क होने पर वह उनका विवाह करके उन्हे अलग-अलग राज्य सौंपकर स्वय भी मुनि सुव्रत स्वामी से सयम की महिमा का उपदेश लेता है। ससार की असारता का अनुभव कर वह वैराग्य धारण कर लेता है। भावी जन्म मे वह सिद्ध बनता है—उसके उपरात श्रावक कुल म जन्म लेकर केवल ज्ञान ग्रहण करता है और शिवपुर की प्राप्ति करता है।

भीमसेन हसराज चौपई

भीमसेन हसराज चोपई भी पूर्व वर्णित काव्यों की भाति ही कथा काव्य है। एल डी इस्टीट्यूट ऑफ इडालोजी, अहमदाबाद के सग्रह मे उपलब्ध इस प्रति मे इस भावना विषयक काव्य कहा है। इस ग्रन्थ की यही एक मात्र प्रति प्राप्त हो पायी है। कृति के रचनाकाल के विषय मे निम्नाकित दोहा प्राप्त होता है—

संवत सोळ वेद सिणगार, वर्षारितु जलधर विस्तार।
श्रावण मास सुक्ल सप्तमी, रच्यउ रायश्रीगुरुपय नमी ॥ 670 ॥

इसके अनुसार संवत सोल वेद सिणगार के श्रावण शुक्ला सप्तमी को ग्रंथ की रचना की गई थी। सोल शब्द सात और तीन दोनों ही संख्याओं के लिए प्रयुक्त होता है। अतः उक्त दोहे के अनुसार सं० 1647 या 1643 की रचना संवत माना जा सकता है। दोहे में तिथि के साथ वार का निर्देश नहीं होने से सही संवत का निर्धारण विवादास्पद ही रहेगा।

प्राचीन जैन वाङ्मय में इस तरह की कोई कथा अभी तक ज्ञात नहीं है, जिसे इस कथा का आदि स्रोत कहा जा सके, पर ऐसी कथा अवश्य ही रही होगी। इस कथा में भीमसेन और राजहंस को धर्मोपदेश देने वाले ऋषि राम का भी नामोल्लेख प्राचीन जैन साहित्य में उपलब्ध नहीं है। कुशललाभ ने मात्र इतना संकेत दिया है कि भगवान महावीर के नवें गणधर अचल भ्राता ने अपने शिष्यों की प्रार्थना पर उनको भीमसेन हंसराज का कथानक सुनाकर भगवान जिनेश्वर की आराधना हेतु प्रेरित किया था। पर कथा के मूल उत्स की ओर उसने कोई संकेत नहीं दिया।

कथा सार

किसी पथिक की आलोचना पर श्रीपुर के राजा भीमसेन ने अपने नगर में फल फूलों से युक्त तरुलताओं से समाकीर्ण नंदन वन नामक एक उद्यान का निर्माण किया। राजा के आमात्य सुमति का पांचवां पुत्र हितसागर राजा का अनन्य मित्र था। वह नन्दन वन में आकर वहां के वृक्षों और लताओं के गुणों से सम्बन्धित भीमसेन के प्रश्नों का समाधान करता था।

उधर विशालपुरी के राजा रिणकेसरी और उसकी रानी कमलावती चिन्तातुर होकर अपनी यौवन प्राप्त अद्वितीय सुन्दरी कन्या मदनमंजरी के विवाह की मंत्रणा कर रहे थे। उन्हें जगन्नाथ की यात्रा से लौटे एक संन्यासी के ज्ञानी शुक (तोता) ने पूछने पर श्रीपुर के राजा भीमसेन के गुणों की प्रशंसा करते हुए राजकुमारी का विवाह उससे करने का सुझाव दिया। मदनमंजरी ने शुक द्वारा कहे गए गुणों के आधार पर मन ही मन भीमसेन को अपने पति के रूप में स्वीकार कर लिया। रानी अपनी पुत्री का विवाह इतनी दूर नहीं करना चाहती थी। अतः उसकी सलाह पर राजा ने सिंहल द्वीप के राजा सगरराय के साथ अपनी पुत्री का सम्बन्ध निश्चित कर दिया। राजकुमारी ने संन्यासी से निवेदन कर शुक को प्राप्त कर लिया।

दासी के माध्यम से अपने माता पिता के निर्णय की जानकारी मिलने पर मदनमंजरी ने भीमसेन के साथ ही विवाह की अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा को दोहराया।

धात्री द्वारा पुत्री की प्रतिज्ञा की जानकारी मिलने पर भी माता पिता ने उस पर ध्यान नही दिया।

राजकुमारी ने त्रिपुरा देवी की पूजा की और भीमसेन को वर के रूप मे प्राप्त करने का वरदान मागा। उसने अपना प्रेम सदेश शुक के माध्यम से भीमसेन के पास भिजवाया और सगरराय को पराजित कर उसका वरण करने की प्राथना की। प्रत्युत्तर मे भीमसेन ने शुक के माध्यम से राजकुमारी को वन मे आकर मिलने का सदेश भेजा। तदनुसार वह विवाह के दिन त्रिपुरा देवी की पूजा के बहाने वन मे गई। वहाँ धाय के द्वारा सदलबल विवाह हेतु सगरराय के आगमन की सूचना मिलने पर मूर्छित हो गई। होश मे आने पर भीमसेन से विवाह न होने की स्थिति मे अग्नि प्रवेश की रट लगाने लगी। माता पिता ने उसे समझाया और सगरराय से राजा ने अपने साले की पुत्री का विवाह कर दिया।

मदनमजरी रात मे सबके सो जाने पर त्रिपुरा देवी के मदिर मे गयी और देवी को उपालभ देती हुई अपनी ही वेणी से फासी का फदा लगा पेड पर झूल गई। धाय के हल्ला मचाने पर भीमसेन ने आकर उसके बधन काटे। शुक द्वारा भीमसेन का परिचय मिलने पर दोनो ने देवी के सम्मुख एक दूसरे को विवाह सूत्र मे बाध लिया। राजा रिणकेसरी और रानी कमलावती पुत्री को जीवित देख कर प्रसन्न हुए।

उधर धोखे का पता लगने पर सगरराय भीमसेन को मारने के उद्देश्य से जगल मे घात लगाकर बैठ गया। उसकी सेना ने विदा होकर लौटते भीमसेन और मदनमजरी को घेर लिया। भीमसेन ने अकेले ही सगरराय की सेना से युद्ध किया और विजयश्री प्राप्त की। विजयोपरान्त भीमसेन को जब मदनमजरी निश्चित स्थान पर नही मिली तो उसने आग मे जलकर प्राणान्त करने की प्रतिज्ञा की। पर शकुन प्रमाणियो द्वारा आश्वस्त किये जाने पर कि मदनमजरी सातवें दिन स्वत उसे मिल जायेगी — उसने आत्महत्या का विचार छोड दिया। उधर तृषातुर, भयग्रस्ता, विरह व्यथिता मदनमजरी भटकती हुई एक सरोवर के समीप जा निकली। एक तपस्विनी उसे अपने आश्रम मे ले गयी और आश्रम के पेड-पौधो से उसका परिचय कराया। तपस्विनी की अनुपस्थिति मे उसने एक विषाक्त फल खा लिया। विष के प्रभाव से मूर्छित मदनमजरी को देख तपस्विनी ने सहायतार्थ पुकार की। अन्य तपस्वियो ने आकर उसका उपचार किया। होश मे आने पर अभगसेन ने मदनमजरी को भीमसेन की जीत की सूचना दी। भीमसेन भी अपनी प्यारी रानी को पुन पाकर हर्षित हुआ। वे तपस्वियो के आश्रम मे दस दिन तक अतिथि के रूप मे रहे। भीमसेन ने तपस्वियो से विषधर के विषहरण तथा अदृष्ट होने की विद्या सीखी। तदुपरान्त वहाँ से विदा होकर वे श्रीपुर पहुँचे।

एक दिन रात मे राजा रानी की निद्रा उचट गयी। उन्होने उनके महल पर

हंसिनी से वार्तालाप कर रहे हंस से सुना कि वह 21 दिन बाद इस देह को छोड़ कर रानी के गर्भ से राजकुमार के रूप में अवतरित होगा। रानी गर्भवती हुई। उसने अमृतफल के आहार का दोहद लिया। रानी का दोहद पूर्ण करने हेतु वन में गये राजा रानी वन में भटक गये। राजा ने वन में मदनलता नामक युवती से विवाह किया। मदनमंजरी के दोहद की इच्छा को हंसिनी ने पूर्ण किया। रानी को पुत्र की प्राप्ति हुई। उसका नाम राजहंस रखा गया। हंसिनी राजहंस के रूप में अवतरित अपने पूर्व भव के पति राजहंस से यदाकदा मिलती रही।

हंसराज उत्तम अश्वों पर सवारी का अभ्यास करने लगा। एक दिन वह वन में बहुत दूर निकल गया। वह सरोवर में जल पीकर वृक्ष की छाया में विश्राम करने लगा। वहीं उसने एक दुर्दान्त सिंह को मारकर वन्य प्राणियों को निर्भय किया। अमृत फल के प्रभाव से जन्म लेने वाले राजकुमार को सार्विक भाषा का ज्ञान था। उसने फेत्कारी की वाणी को समझ कर आधी रात में नदी में बह रही एक स्त्री को बाहर निकाला और उसके पास से प्रभूत धन प्राप्त किया। उसकी खोज में आये अपने पिता भीमसेन के साथ वह श्रीपुर पहुँचा। राजा भीमसेन ने उसे युवराज के पद से विभूषित किया।

राजकुमार हंसराज ने हंसिनी की सहायता से अवंतिपुर की राजकुमारी रूपमती का स्वयंवर में वरण किया। अवंतिपुर से लौटते समय उसकी भेंट अनेक ऋषियों से हुई। उसने ऋषि श्री राम को श्रीपुर पधारने हेतु आमंत्रित किया। ऋषि राम का उपदेश सुनकर राजा भीमसेन को वैराग्य हो गया। अपना राज पाट युवराज हंसराज को सौंप कर उसने संयमभार ग्रहण कर लिया। हंसराज भी श्रावक बनकर संयम नियम से राज्य संचालन करने लगा।

राजहंस को जयभद्र और बलिभद्र नामक दो पुत्रों की प्राप्ति हुई। अपना अंत समीप जान राजहंस ने अपने ज्येष्ठ पुत्र जयभद्र को राज्य सिंहासन सौंप दिया और शुद्ध ध्यान से संथारा करते हुए केवली होकर निर्वाण को प्राप्त किया और भावी जन्म में नवम गणधर श्रीवरण के रूप में अवतरित हुआ।

जिनपालित जिनरक्षित रास

इस काव्य का अपर नाम जिनपालित जिनरक्षित संधिगाथा भी है। अपभ्रंश काव्य परम्परा से प्रभावित चौपइयों में निबद्ध इस लघु रचना का प्रणयन कुशल लाभ ने श्रावण शुक्ला 5 सं० 1621 को पूर्ण किया। इस रचना की विभिन्न प्रतियों में इसमें निबद्ध चौपइयों की संख्या 85 से 91 तक मिलती है। इसका स्रोत भी अद्यावधि अज्ञात है।

कथा सार

चम्पा नगरी मे शत्रुजित नामक राजा राज्य करता था। इस नगरी के सेठ माकन्दी और सेठानी भद्रा के पुत्र जिनरक्षित और जिनपालित अपने माता पिता से आज्ञा लेकर व्यापार के लिए देशाटन पर निकले। उनका जहाज तूफान म नष्ट हो गया। किसी प्रकार समुद्र तट पर पहुँचकर फलो के आहार से उन्होंने अपने प्राण बचाये। एक दिन रयणादे नामक एक सुन्दरी ने विकराल रूप धर इन्हें मारना चाहा। अतिशय अनुनय विनय पर वह उन्हें अपने घर ले आई और षोडश शृंगारों से सज्जित हो उसने उनसे रमणेच्छा व्यक्त की। उस स्त्री के साथ भोग विलास म लिप्त हो दोनो भाई वहां रहने लगे।

एक दिन इन्द्र के आदेश म दोनो भाइयो को दक्षिण दिशा मे भ्रमण के वजन सहित अन्य दिशाओ मे भ्रमण की अनुमति देकर वह कहीं चली गई। रात दिन वनो म भ्रमण का आनन्द लेते एक दिन वे दक्षिणस्थ वन मे जा निकले। उसे उन्होंने विपाक्त गन्ध और मानवास्थियों से समाकीर्ण पाया। वहीं सूली पर चढ़ाये गये विलाप करते किसी पुरुष ने उन्हें बताया कि उसे रयणादेवी न सूली पर चढाया है और अतत उनके साथ भी ऐसा ही व्यवहार होने वाला है। उस पुरुष न उन्हे अपनी रक्षा के लिए पूर्व दिशा मे अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा को विहार करने वाले सेलग यक्ष की पूजा की सम्मति दी। निर्देशानुसार उन्होंने यक्ष की पूजा कर उसे सन्तुष्ट किया।

सेलग ने उन्हें यथोचित उपदेश देकर अपनी पीठ पर चढ़ा लिया और सागर पार चम्पापुर की ओर प्रस्थान किया। लौटने पर रयणादेवी ने जब श्रेष्ठि पुत्रों को वहाँ नहीं पाया तो खड्ग उठा वह उनके पीछे दौड़ी। रयणादे का सेलग से भयकर युद्ध हुआ। जिनपालित ने सेलग को अपना शत्रु बताते हुए रयणादे से अपनी अनुरक्ति का प्रदर्शन किया। सेलग न जिनपालित को अपनी पीठ से नीचे गिरा दिया और जिनरक्षित को चम्पापुरी पहुँचा दिया।

कुछ समय पश्चात् वर्द्धमान स्वामी विहार करते हुए चम्पा-नगरी आये। जिनरक्षित द्वारा अपने भाई के विषय मे पृच्छा करने पर उन्होंने बताया कि जिन पालित ने विदेह क्षेत्र म जन्म लिया है और केवली होगा। जिनपालित का वृत्तान्त सुन जिनरक्षित ने दीक्षा ग्रहण करते हुए 'जिनपालित जिनरक्षित सघ' की स्थापना की। ससार को एक विशाल सागर के समान समझ सेलग जैसे गुरु से जन धर्म का ज्ञान प्राप्त कर उसने शिवपुर को प्राप्त किया।

अगडदत्त कुमार रास

अगडदत्त कुमार रास की रचना स० 1625 मे कार्तिक शुक्ला 15 गुरुवार को वीरमपर म की गई थी। जैसा कि निम्नांकित दोहे से स्पष्ट है—

मयन याण रद सिणगार कातिग सुदि पूनिम गुरुवार।
श्री वीरमपुर नयर मझारि करी चउपई मति अनुसार ॥ 318 ॥

इस रचना की दो ही प्रतियां उपलब्ध हैं—एक बडौदा स्थित प्राच्यविद्या मन्दिर म और दूसरी प्राच्य विद्या शोध सस्थान, पूना मे। बडोदा की प्रति म रचना काल सूचक उक्त दोहे म 'रद' के स्थान पर 'ख' और गुरुवार के स्थान पर रविवार शब्द प्रयुक्त है। इसके आधार पर सवत 1605 के अको की प्राप्ति होती है। पर न तो यह शब्द छन्द म उपयुक्त लगता है और न इस सवत में मिति के साथ वार का ही योग बठता है। जबकि स० 1625 म प्रदर्शित मिति 'कातिग सुदि पूनिम' के साथ 'गुरुवार' का बराबर मेल मिल जाता है—अत रचना काल स० 1625 कातिग सुदि पूनिम गुरुवार ही उचित है।

कथा स्रोत

जन साहित्य म इस कथा की बहुत प्राचीन परम्परा रही है। अनेक आख्यान काव्य इसके आधार पर लिखे गय हैं। सस्कृत प्राकृत राजस्थानी, गुजराती आदि अनेक भाषाओ मे गद्य और पद्य मे लिखे कथा के रूप मिलते हैं। इसका प्राचीनतम रूप पांचवी शती विक्रमी मे संघदासगणि द्वारा विरचित 'वसुदेव हिंडी' कथा के उप भाग 'धमिल्ल हिंडी' मे अवान्तर कथा के रूप मे उपलब्ध है। आठवी शताब्दी विक्रमी मे जिनदास गणि द्वारा रचित उत्तराध्ययन चूणिक मे भी इस कथा को दृष्टान्त कथा के रूप मे ग्रहण किया गया है। वादि वेताल शान्तिसूरि कृत उत्तराध्ययन की पाइय (प्राकृत) टीका तथा स० 1129 मे नेमिचद विरचित उत्तराध्ययन टीका मे 328 प्राकृत पद्यो मे दी गयी है। किसी अज्ञात सस्कृत कवि द्वारा 334 श्लोकों मे विरचित 'अगडदत्त चरित्र' श्री विनय भक्ति सुन्दर चरण ग्रथमाला मे प्रकाशित किया गया है। कुशललाभ से पूववर्ती इस कथा की निम्नाकित कृतिया और प्राप्त होती हैं—

(1) अगडदत्त रास—रच० भीम र का—स० 1584
(2) अगडदत्त मुनि चोपई—रच० सुमति र का—स० 1601

—कुशललाभ के उपरान्त भी इस विषयक अनेक रचनाएँ रची गई मिलती हैं।

कुशललाभ कृत 'अगडदत्त रास' इससे पूव विरचित प्राकृत भाषा—निबद्ध अगडदत्त रास और भीम कवि द्वारा प्रणीत अगडदत्त रास' का ही सशोधित विस्तृत रूप कहा जा सकता है पर उक्त रचनाओ से कुशललाभ की रचनाओ मे पर्याप्त अन्तर है। वह अतर अगडदत्त के माता पिता, आचाय, अध्ययन स्थान, प्रेमिका के नाम आदि और काव्य मे वर्णित घटना प्रसगो से सबधित ही मुख्य है।

भीम कृत 'अगडदत्त रास पाँच खण्डो म तथा 460 दोहा चौपइयो मे रचित

है। पर कुशललाभ ने भीम के शिल्प को न अपना कर पूर्ववर्ती अन्य कवियों का अनुकरण किया है। पूर्ववर्ती कवियों ने काव्यारंभ में सरस्वती स्तुति के साथ उसका नखशिख वर्णन किया है—पर कुशललाभ ने सरस्वती वंदना में सात्विक धार्मिक आचरण का अनुपालन किया है। उसका प्रकृति वर्णन या नखशिख वर्णन भी वसुदेव हिंडी, भीम या सुमति रचित रास काव्यों की तरह विस्तार लिए हुए नहीं हैं।

कथा सार

शंखपुर में राजा भीमसेन राज्य करते थे। उसके बलशाली सामंत सूरसेन का वध एक प्रवासी सुभट ने द्वन्द्व युद्ध में कर दिया। राजा ने उस सुभट को अपना सेनापति नियुक्त कर उसका नाम अभंगसेन रखा।

अभंगसेन के डर से सूरसेन की पत्नी ने अपने रूपवान पुत्र अगडदत्त को सूरसेन के मित्र सोमदत्त के पास विद्याध्ययन के लिए चम्पापुरी भेज दिया। सोमदत्त ने उसके भोजन और निवास की व्यवस्था एक व्यवहारी के घर कर दी। अगडदत्त एक दिन जब पेड़ की छाया में सो रहा था, व्यवहारी की पुत्री मदनमंजरी ने आकर उससे प्रणय निवेदन किया। उसने अगडदत्त को बताया कि उसका पति सुदीर्घ काल से परदेश गया हुआ है और अभी तक नहीं लौटा। अगडदत्त ने उसके प्रणय निवेदन को स्वीकार कर विद्याध्ययन की समाप्ति पर उससे विवाह कर लेने का वचन दिया।

शिक्षा समाप्त कर अगडदत्त जब घर लौटने को तैयार हुआ, सोमदत्त ने जो अगडदत्त और मदनमंजरी की प्रणय लीला से परिचित था, राजा से उसकी कुलीनता का परिचय देकर उसे सम्मानित कराया। उसी समय किसी महाजन द्वारा नगर में चोरों के आतंक की शिकायत पर राजा ने सवा लाख के पारितोषिक सहित चोरों को पकड़ने हेतु बीड़ा घुमाया। अगडदत्त ने बीड़ा स्वीकार कर चोरों को सात दिन में पकड़ लाने का वचन दिया।

छः दिन तक निरन्तर वेश्याओं और जुवारियों के घरों में भटकने के उपरांत योगी का वेश धारण किए वांछित चोर से उसकी भेंट हो गई। अगडदत्त ने उससे मैत्री कर ली और उसके साथ चोरी करने निकल गया। सागरसेठी नामक व्यवहारी के घर चोरी करने के उपरांत सोये हुए श्रमिकों की हत्या का प्रयास करते योगी रूपधारी चोर पर अगडदत्त ने तलवार से प्रहार किया। मरने से पूर्व चोर ने उसे अपने खजाने का पता बताकर अपनी तलवार उसे सौंपते हुए बताया कि वह उसकी बहिन वीरमती से विवाह कर ले, जिसने अपने भाई को मारने वाले से ही विवाह करने की प्रतिज्ञा कर रखी है।

चोर के कथनानुसार वह वीरमती के पास पर्वत की गुफा में गया। वीरमती ने

उसे मारना चाहा, पर त्रिया चरित्र के पारखी अगडदत्त ने वीरमती के छलछद्म पूर्ण आघातो से अपनी रक्षा कर वीरमती और खजाने पर अधिकार किया और उन्हे राजा के पास ले आया।

अगडदत्त ने अपने वचनो के अनुसार मदनमजरी से विवाह किया और अपार धन और सेना सहित बसन्तपुर के लिए प्रस्थान किया। पर मार्ग मे वह भटक गया। उसे मार्ग मे आने वाले सकटो की पूर्व सूचना दे दी गयी थी। मदनमजरी ने भी उसे उस मार्ग से जाने से टोका पर उसने एक न सुनी। फलत एक एक कर उसे नदी, सिंह, सर्प और चोरो मे सवधित चार सकटो का सामना करना पड़ा और उसने सब पर सफलता पाई।

बसन्तपुर के समीप आने पर उसके परिजनों ने आगे आकर मार्ग मे ही उसका स्वागत सत्कार किया। उसने सरोवर के समीप अपने पितहता भमगसेन को द्वन्द्व-युद्ध मे मार डाला और परिजनो को बसन्तपुर के लिए विदा कर मदनमजरी सहित क्रीडा के लिए वही ठहर गया।

वहा मदनमजरी को परपुरुष के साथ सभोगरत देख एक नभचारी विद्याधर ने उसे मारने का विचार किया। पर उससे पूर्व ही एक साप ने उसे डस लिया सर्प दश से मृत्यु प्राप्त मदनमजरी के साथ अगडदत्त ने जल मरने का विचार किया पर विद्याधर ने मदनमजरी को जीवनदान देकर अगडदत्त को अपने निश्चय से रोक लिया। विद्याधर ने अगडदत्त के प्रेम की प्रशसा करते हुए आकाश मार्ग से देखी मदनमजरी की परपुरुष के साथ प्रणय लीला की घटना कह सुनाई।

उसी रात मदनमजरी ने देहर मे छिपे चोरो की सहायता से अगडदत्त को मार डालने का प्रयत्न किया। मदनमजरी असफल रही पर इस घटना से चोरो के मन मे वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होने चोरी का परित्याग कर एक जैन मुनि से दीक्षा ले ली। अगडदत्त मदनमजरी के साथ घर पहुँचा। उसको पुन प्राप्ति हुई।

एक दिन भ्रमण करते हुए वह उस स्थान पर जा निकला जहा भुजगम नामक चोर अपने साथियो के साथ तपस्यारत था। अगडदत्त द्वारा उनसे वैराग्य का कारण पूछा जाने पर उन्होने मदनमजरी द्वारा देहरे मे अगडदत्त की हत्या के प्रयास वाली सारी घटना सुनायी। अगडदत्त ने वही भुजगम से दीक्षा ग्रहण कर ली और नवम् गवाक्ष को पार कर शिवपुरी की प्राप्ति की।

श्री पूज्यवाहण गीत-कथा सार

इस रचना मे कुशललाभ ने गुरु की महिमा का बखान किया है। उसने गुरु के स्तवन को ही भवाम्बोधि से पार उतारने मे समर्थ एक वाहन या पोत की सज्ञा दी है। इस गीति रचना मे आदि जिनेश्वर, शरणागत वत्सल सप्तम तीर्थकर सुपार्श्व शाति के अग्रदूत सोलहवें तीर्थकर शान्तिनाथ, बाईसवें तीर्थकर नमि

नाथ स्वामी और चौबीसवें तीर्थंकर वर्द्धमान के प्रशस्त कार्यों का गुणगान किया है। भवसागर से पार उतारने वाले वाहन ये ही वर्धमान स्वामी कहे गये हैं, जिन की पूजा कर, भण्डारी वीरजी, राका, नागजी, वच्छा पदमजी, भाण, साडण, आवड, मनु सहजिया आदि श्रावकों ने इच्छानुसार फल की प्राप्ति की। जिनकी पाटण जैसे महान नगर मे प्रतिष्ठा की गई। जिनचन्द्र सूरि ने प्रवावती नगरी के लिए संघ का नेतृत्व कर वहाँ भगवान वर्द्धमान की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की, श्रावक संघ को जैन समवसरण का उपदेश दिया और गुरु का स्तवन करते हुए दीक्षा आदि अनेक धार्मिक कार्यों का सम्पन्न किया।

जन भक्ति तत्त्व से आवृत्त जिनेश्वर के प्रवचन का सुन समस्त धरा राजि तक आह्लादित हो उठी। गुरु की देशना के प्रभाव से आकाश मे बादल गर्जना कर रहे हैं। कोकिला के मधुर पंचम स्वर मे भी गुरु महिमा के गीत की ही झंकार है। मोरो के नाच और चकोरो के नयनो मे भी गुरु के उपदेश का भाव व्यंजित हो रहा है। विश्व को सुगंधित करनेवाली शीतल मन्द सुगंधित अनिल मे भी गुरु के उपदेश की सुगंधि प्रसारित हो रही है। यह है गुरु से संबंधित श्री पूज्यवाहण गीत का भाव।

सुन्दर और सरस भावो से युक्त यह गीति काव्य अत्यन्त ही सुन्दर बन पड़ा है। कवि ने इस आसावरी सामेरी रामगिरि, केदार गोडी, गोड मल्हार आदि रागो और अनेक ढालों मे निबद्ध कर इसे और भी अधिक प्रभावोत्पादक बना दिया है।

स्थूलिभद्र छत्तीसी

आचार्य स्थूलिभद्र की प्रशंसा मे विरचित इस काव्य मे भी ब्रह्मचर्य की महिमा का प्रतिपादित करते हुए गुरु की महिमा का ही बखान किया गया है। यह कृति कुल 36+1 = 37 पद्यों मे रचित है। इसमे रचनाकाल विषयक कोई संकेत उपलब्ध नही है।

कथासार

ऋद्धि सिद्धियो से सम्पन्न पाटली नगर के आमात्य के स्थूलिभद्र और श्रीयक नामक दो पुत्र थे। स्थूलिभद्र कोशा नाम की वार-वधू पर अनुरक्त था। वह अपनी सोलह वर्ष की वय में ही प्रवृत्ति त्याग कर दीक्षा लेकर श्रावक बन गया था। उसने अपने गुरु के आदेश से कोशा वार-वधू के घर ही चित्रशाला में चातुर्मास व्यतीत किया—पर वहाँ के वातावरण से प्रभावित हुए बिना अप्रमादित रहते हुए गुरु के आश्रम मे पुनः लौट आया।

गुरु ने जब स्थूलिभद्र का इन्द्रिय संयम मुक्त कंठ से प्रशंसा किया तो अन्य मुनियों को

उससे ईर्ष्या हो गयी। आगामी वर्ष में उनमें से एक अन्य श्रावक ने भी कोशा की चित्रशाला में चातुर्मास बिताने की आज्ञा मांगी। गुरु के द्वारा बार बार समझाये जाने पर भी जब वह नहीं माना तो गुरु ने आज्ञा प्रदान कर दी। प्रथम रात्रि में ही कोशा के रूप सौन्दर्य से प्रभावित होकर उसने अपने आपको कोशा को समर्पित करना चाहा। कोशा ने समर्पण के लिए श्रावक के सम्मुख नेपाल से रत्न जटित कंबल लाकर उसे भेंट करने की शर्त रखी। श्रावक ने नेपाल से रत्न जटित कम्बल लाकर शर्त के अनुसार कोशा को भेंट कर दिया। कोशा ने उस कंबल से अपना शरीर पोंछा और उसे गंदी नाली में फेंक दिया। श्रावक ने जब इस पर आपत्ति की तो कोशा ने उसे उत्तर दिया "जब तुमने अपने शरीर रूपी अमूल्य रत्नजटित कंबल को ही मुझ जैसी गंदी नाली में फेंकने का निश्चय कर रखा है तो उसकी तुलना में तुम्हारा यह रत्न जटित कंबल तो कुछ भी नहीं है।" वेश्या के वचनों ने श्रावक के हृदय को विद्ध कर दिया। अत्यंत लज्जित हो वह गुरु की शरण में गया और क्षमा याचना करने लगा।

थंभण पार्श्वनाथ स्तवन

इस स्तवन की रचना कुशललाभ ने चैत्र शुक्ला 11 सं० 1638 को खंभात नगर में की थी। इस आशय का उल्लेख जैन गूर्जर कविओ, भाग 3 खण्ड 1—पृष्ठ 687 पर मिलता है। 'इंडियन ऐफेमरीज' से तिथि और वार का उक्त संवत् में मेल बैठ जाता है। अतः उक्त रचना तिथि उपयुक्त ही प्रतीत होती है।

स्तम्भन पार्श्वनाथ की स्तुति में संस्कृत राजस्थानी आदि भाषाओं में अनेक स्तवन रचे गये हैं। संस्कृत में विरचित ऐसे स्तवनों का संकलन तरुण प्रभाचार्य और जिन सोमसूरि ने मंत्राधिराज कल्प में किया है। कुशललाभ द्वारा रचित प्रस्तुत स्तवन इसी परंपरा की राजस्थानी भाषा निबद्ध रचना है।

यह एक धार्मिक यात्रा विषयक काव्य है। कवि निर्दिष्ट स्थल पर पहुंच कर भगवान जिनेश्वर की प्रतिमा और सत्तर भेदी पूजा के दर्शन से प्रभावित होने की ओर इंगित करता है। जिनेश्वर की स्तुति, थंभण पार्श्वनाथ के नामकरण और उसकी उत्पत्ति, द्वारका नगरी के महत्व और अनेक स्थानों पर प्रतिमा स्थापन का महत्व बताते हुए कवि ने स्थंभन पार्श्वनाथ के माहात्म्य का प्रतिपादन दृष्टांतों के आश्रय से किया है। कवि ने इस स्तवन की गाथा सं० 11 में पालिताणा नगर में रहते हुए प्रसिद्ध रसायन शास्त्री नागार्जुन के रासायनिक प्रयोग और स्वर्णादिक की सिद्धि का भी उल्लेख किया है।

स्तवन सार

राम और लक्ष्मण द्वारा सभी मनोरथों को सिद्ध करनेवाले जिनवर की स्तुति

करने से सात मास और नव दिनों में समुद्र का पानी स्तंभित (मर्यादित) हो गया। इस चमत्कारी घटना के कारण इस स्थान का नाम थंभणा (स्तंभन) रखा गया। और उसी प्रसंग से समीपस्थ वन में उसी नाम (स्तंभनक) से पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित की गयी। इस तीर्थ की महिमा अपार है। श्री कृष्ण ने द्वारका में जिनवर की प्रतिमा स्थापित की। कांतनगर में सेढ़ी नदी के किनारे पलाश वृक्ष के नीचे स्थापित जिन प्रतिमा बालू से ढक गयी थी। उस स्थान पर प्रतिदिन एक गाय दूध की धारा का स्राव करती थी जिससे वह भूमि चिकनी हो गयी। कुशललाभ के गुरु अभयदेव ने इस सेढ़ी नदी में स्नान किया और उक्त जिनवर की पूजा और स्थापना की। उससे उनका रक्त पित्त रोग दूर हो गया। ऐसे हैं स्तंभनक पार्श्व, जिनके स्मरण मात्र से रोग दूर हो जाते हैं और प्रभात की यात्रा करने से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।

गौडी पार्श्वनाथ स्तवन

इस रचना की अनेक प्रतियाँ हस्तलिखित ग्रंथागारों में उपलब्ध हैं। कहीं इसे स्तवन कहा गया है तो किसी प्रति में छंद। वस्तु छंद का अर्थ भी स्तवन या स्तुति ही होता है। इसके रचनाकाल के विषय में भी अद्यावधि उपलब्ध प्रतियों में कोई उल्लेख नहीं मिलता।

संस्कृत में यशोविजय द्वारा विरचित 'गौडी पार्श्वनाथ स्तवन' अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त है। राजस्थानी भाषा में भी इस विषयक अनेक स्तवन रचे गये मिलते हैं। कुशललाभ द्वारा विरचित 'गौडी पार्श्वनाथ स्तवन' में कुल 23 पद्य हैं।

इसमें प्रारम्भ ही में की गयी सरस्वती वंदना में सरस्वती को सुराणी, स्वामिनी वचन विलास की ब्रह्माणी और विश्वव्यापी ज्योति विशेषणों से अलंकृत कर वंदन किया गया है। कुशललाभ ने इसमें मनुष्य को ही नहीं देव असुर इन्द्र ध्यार, विद्याधर आदि को भी गौडी पार्श्वनाथ की वंदना करते हुए प्रदर्शित किया है। उन्हें विश्वनाथ, चिंतामणि के समान मनोवांछित कामनाओं का पूरक और अपार शक्ति सम्पन्न देव भी कहा गया है। स्तवन में फल की महिमा का बखान करते हुए कहा है कि गौडी पार्श्वनाथ के ध्यान से धरा के सभी कष्ट दूर होते हैं और मनुष्य कुवृत्तियों से सदा दूर रहता है। गौडी पार्श्वनाथ नवकोटि मारवाड़ के अधिपति के रूप में भी संबोधित किए गए हैं।

नवकार छन्द

उन्नीस छन्दात्मक इस लघु रचना में कवि ने पंच परमेष्ठि भगवान जिनेश्वर की महिमा का गान किया है। नवकार मंत्र को जैन सम्प्रदाय में महामंत्र की संज्ञा दी

गयी है और इन सभी मनोरथों का पूरक कहा है। इस मंत्र द्वारा पंच परमेष्ठि का नित्य नियमित पाठ सुख संपत्तियों और विविध ऋद्धियों सिद्धियों का प्रदाता सिद्ध होता है। कहा गया है कि नियमपूर्वक नवकार के नियमों का पालन करने से राजा श्रीपाल की प्रसिद्धि हुई। इसके विधिवत जाप से विष धारण करने वाला सर्प भी अमृत स्रवण करने लगता है। इसमें अग्नि और अन्न का किसी को भान नहीं है। अतः पांचों प्रकार के प्रमादों और विषयों को त्याग कर पंच परमेष्ठि पंचज्ञान, पंचदान पंचचरित्र आदि पाँच आचारों का पालन आवश्यक है। कवि ने नवकार के प्रभाव से हिंसक पशु पक्षियों में अहिंसा के भाव जाग्रत होते और संकट ग्रस्तों को संकट से उबरते प्रदर्शित कर नवकार की महिमा का गान किया है।

भवानी छंद

इस रचना का अपर नाम 'भवानी स्तोत्र' भी मिलता है। इसमें मातृकाओं में भवानी रूप की महिमा का गान किया गया है। कहा गया है कि भवानी की कृपा से भक्त ऋद्धि सिद्धियों के साथ साथ मनोहर भक्ति सौभाग्य और साम्राज्य प्राप्त कर सकता है। सुख, संपत्ति और संतति की प्रदाता उस भगवती की सेवा करके इन्द्रादिक देवगण स्वयं में अपने अविचल साम्राज्य का सुखोपभोग कर रहे हैं। कवि कुशललाभ ने भगवान शिव से प्राप्त सिद्धि के माध्यम से पिंगल सम्मत काव्य रचना करने वाले निष्णात कवियों की तुलना में अपने को मूर्ख, मतिहीन और तुच्छतर तुकबन्दी करने वाला मानकर पारंपरिक रूढ़ि के अनुसार अपने विनय भाव को प्रदर्शित किया है। कवि ने भवानी छन्द की रचना का उद्देश्य मात्र अपनी जिह्वा का पवित्रीकरण कहा है।

शत्रुंजय यात्रा स्तवन

75 गाथाओं में निबद्ध इस रचना का प्रारम्भ कुशललाभ ने माघ शुक्ला 10 रविवार सं० 1644 को किया और चैत्र सुदि पंचमी संवत 1645 को अपनी शत्रुंजय यात्रा की समाप्ति के साथ ही, रचना की समाप्ति का भी संकेत दिया है। शत्रुंजय यात्रा विषयक इस रचना में इस तीर्थ की महिमा, खरतर गच्छीय जिनचंद्र सूरि के साथ निकाले गए संघ का वर्णन, यात्रा में आई मार्ग की कठिनाइयां, मुगल शासकों की लूटमार, उनके साथ हुए युद्ध, लुटेरों का संघ के द्वारा स्वर्ण मुद्राओं की भेंट देकर यात्रा को निरापद बनाने आदि का वर्णन किया गया है। यह स्तवन अपूर्ण ही प्राप्त हुआ है पर देश की तत्कालीन परिस्थितियों पर अच्छा प्रकाश डालता है।

दुर्गा सातसी

दुर्गा सातसी' की रचना मार्कण्डेय पुराणगत दुर्गा सप्तशती के आधार पर की गई है। इसम 366 छद है, जिनम से 362 छदा म माता दुर्गा के ज म और लोक कल्याणार्थ सम्प न किए गय महत्त्वपूर्ण कार्यों का वणन किया गया है। दवी की अजेय शक्ति का इसम असुर सहारिणी, दव-रक्षिणी तथा मानव क लिए कल्याण कारिणी कहा गया है।

कुशललाभ न मूलकथा म आवश्यकतानुसार यत्र-तत्र पर्याप्त परिवतन किया है, पर युद्ध वणन, रण कौशल और देवी के माहात्म्य का वणन करन मे वह सफल नही हो पाया है। मूल कथा म कुशललाभ द्वारा किय गए कतिपय अ तर इस प्रकार है। राजा सुरथ और वैश्य की वन म भेंट तो होती है पर व एक दूसर का परिचय प्राप्त नही करत। कवि न उनक अ तद्व द्व को भी नही दशाया है। मूल कथा म मार्कण्डेय ऋषि, राजा और वैश्य की कथा सुनन की इच्छा की ओर सकेत मात्र करत हैं, पर दुर्गा सप्तशती मे कवि स्वय सम्पूण कथा कहता है। मूल मे मधु और कटभ का ज म कान के मैल स बताया गया है, इस रचना म कान से उनका ज म बताया गया है मूल के समान इसम सौ वर्षों तक चलन वाले दवासुर सग्राम का कोई उल्लेख नही है। मूल कथा मे दवी को सुग्रीव शुभ का सदेश सुनाता है पर इस कथा मे शुभ स्वय सुग्रीव को योग्य मानकर दवी के पास सदेश दन भेजता है, जो अपनी बुद्धि के अनुसार दवी स बात करता है। प्रस्तुत रचना म दवी विषक या के रूप मे शुभ स विवाह करती है और शुभ की आशा से ही रक्तबीज को मारती है। मूल के समान सुरथ वश्य द्वारा की गई देवी की स्तुति, दवी के द्वारा प्राप्त वरदाना का वणन भी का य मे नही है, अ त म कवि न देवी के विविध रूपा की वदना की है। कुशललाभ ने जैन होत हुए भी मार्कण्डेय पुराणगत दुर्गा सप्तशती' की कथा को हि दुओ के समान महत्त्व दिया है।

पिंगल शिरोमणि

यह राजस्थानी भाषा का प्रथम लक्षण ग्र थ है, जिसमे छद, अलकार, कोश (नाम माला) डिंगल गीत छ द प्रहलिका आदि विषयों को समाविष्ट किया गया है। सम्पूण सामग्री आठ अध्यायो म विभक्त की गई है। इसके रचियता और रचना-काल दोनो ही के विषय म विद्वानो म मतभेद है। कतिपय विद्वान जैसलमेर के रावल हरराज को, जो कुशललाभ का शिष्य था, इस ग्र थ का रचयिता मानत हैं। इस ग्र थ की पुष्पिकाओ म 'ढाला मारवणी चौपई और 'माधवानल काम कदला चौपई की भाँति कुशललाभ न यह स्पष्ट किया है कि उसन राजकुमार हरराज के कुतूहल के लिए ही इस ग्र थ की रचना की है। रचयिता के रूप मे

अपने आश्रयदाता का नाम देने की उस काल की परिपाटी के अनुसार ही कुशल लाभ ने हरिराज को रचना का श्रेय दिया है। ग्रन्थ में गुरु शिष्य के मध्य प्रश्नोत्तर शैली का आश्रय लिया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में रचनाकाल विषयक निम्नांकित दोहा पुष्पिका के रूप में प्राप्त होता है –

पाडव मुनि सर मेदनी सुक्ल पग्य नभ मास।
तिथ नवमी रविवार तिम, जेसल हरियद वास॥

इस दोहे के अनुसार 'अंकानां वामतो गति' सिद्धांत के अनुसार संवत 1575 वि० (पाडव 5 मुनि 7 सर (शर) 5 और मदिनी = 1) श्रावण शुक्ला 9 रविवार निर्धारित होता है— पर वह पंचांग से प्रमाणित नहीं होता। कुशललाभ और हरराज का भी इस संवत में अस्तित्व तब नहीं था—ऐसी स्थिति में रचना काल पर भी पुनर्विचार की आवश्यकता थी। प्रस्तुत लेखक की मान्यता है कि रचनाकाल विषयक इस दोहे में अवश्य कोई विसंगति हुई है। लेखक की सम्मति में यह दोहा निम्न प्रकार होना चाहिए—

पाडव मुनि रस मदनी सुक्ल पख्य नभ मास।
तिथ नवमी रविवार तिम जेसल हरियदवास॥

इसमें मुनि से तात्पर्य (व्याकरण शास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य मुनित्रय पाणिनी, कात्यायन और पतंजलि के आधार पर) 3 की संख्या से है। 'सर' के स्थान पर 'रस' पाठ ग्रहण करने पर 5 के स्थान पर 6 संख्या प्राप्त करने से स० 1635 वि० की निष्पत्ति होती है। दोहे में दिए गए संवत तिथि, वार आदि का मेल इस निष्पत्ति से बराबर बैठ जाता है। पर हरराज की मृत्यु पौष शुक्ला 6 मी मंगल वार स० 1634 में हो गई थी—अतः यही कल्पना की जा सकती है कि हरराज की युवराजावस्था में विरचित ग्रन्थ को व्यवस्थित रूप कुशललाभ ने उसकी मृत्यु के उपरान्त दिया होगा। यह भी सम्भव है कि रचना तिथि में प्रदर्शित सम्वत का प्रारम्भ श्रावणादि या कार्तिकादि हो, जिससे गणना में एक वर्ष का अन्तर आ जाना सम्भव है। कुशललाभ ने हरराज के लिए स० 1616 में माधवानल कामकंदला चौपई की और स० 1617 में 'ढोला मारू चौपई' की रचना की थी। उसके द्वारा विरचित अंतिम प्राप्त रचना का काल स० 1648 वि० मिलता है—ऐसी स्थिति में पिंगल शिरोमणि की रचना या रचनोपरान्त व्यवस्थित करने का काल इसी अवधि में होना सम्भव है और वह स० 1635 ही रहा होगा। कवि ने अपने जीवन के अन्त तक भी इस कृति में कुछ उदाहरण परक अंश जोड़े घटायें होंगे। इस सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

कुशललाभ ने पिंगल शिरोमणि ग्रन्थ में विवेचित विषय-वस्तु की रूपरेखा के प्रस्तावना भाग में ईशवंदना, लघु गुरु, गण, वर्ण, छन्द आदि का परिचय

दिया है। समग्र विषय वस्तु का कवि ने आठ अध्यायों में विभाजित किया है पर यह सब अव्यवस्थित सी है। कहीं अध्यायों का स्पष्ट उल्लेख है और कहीं कोई उल्लेख तक नहीं किया गया है। मात्र विषय का शीर्षक देकर नये अध्याय के प्रारम्भ की सूचना दे दी गयी है। अध्यायों का 'प्रकाश' संज्ञा दी गई है। प्रथम प्रकाश के उपरान्त एकदम पंचम प्रकाश का उल्लेख है। छठे प्रकाश में मात्र अथ अलंकार वर्णन' शीर्षक दिया गया है। इसी प्रकार 'सासोत्तरा' विषयक प्रकरण का अन्त में इति सासोत्तरा' लिखकर मात्र इस अध्याय के अंत की सूचना दे दी गई है। उडिंगल नाम माला और प्रहेलिका विषयक स्वतन्त्र अध्यायों की प्रतीति भी उनके अन्त में उल्लिखित 'इति उडिंगल नाम माला' और 'इति प्रहेलिका' शीर्षक से होती है। पुष्पिका के आधार पर गीत प्रकरण को अंतिम अध्याय माना जा सकता है। ऐसी स्थिति में पूरा ही ग्रंथ पुनः व्यवस्थित और संशोधित करने के उपरान्त पुनर्संपादन की अपेक्षा रखता है।

कवि ने विभिन्न पौराणिक कथाओं का आश्रय लेकर ग्रंथ में निहित विषय वस्तु को समझाने का प्रयास किया है। उसने वार्णिक छन्दों के उदाहरण शिव कथा के आधार पर लिखे हैं तो मात्रिक छन्दों के उदाहरणों के लिये रामकथा के प्रसंगों को आधार बनाया है। छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों के लिये यह पारम्परिक प्रणाली कही जा सकती है। गीत प्रकरण की रचना कवि ने छन्दों के लक्षण परक दोहों के साथ साथ ऐतिहासिक पात्रों की प्रशस्ति और राम हनुमान, कृष्ण, विष्णु गरुड आदि पौराणिक देवी देवताओं के भक्ति परक गीतों की सर्जना द्वारा की है।

छन्द निरूपण

पिंगल शिरोमणि में प्रथम प्रकाश से चतुर्थ प्रकाश पर्यन्त कवि ने वार्णिक, मात्रिक, दण्डक और मिश्र (संकर) जाति के छन्दों, उनके भेदोपभेदों, लघु गुरु अक्षरों गण, वर्ण, जाति आदि का वर्णन प्रस्तुत किया है।

वार्णिक छन्दों में ससमुखी, धारामती, गायत्री, चूडा (चूडामणि), वर्ण, मधुमति, कुमारी हंसमाला, भाणय, विज्जुमाला, अर्द्धनाराच (अनुष्टुप), हल मुखी ससिभुजा, वहती (कुंभवती), पाणू अमतगति, सुद्ध विराटी मयूरणी, रुक्मवती, हंसी भत्ता मनोरमा, चम्पकमाला (पंक्ति), इन्द्रवज्रा, मालियवाम, भुजंगप्रयात्, कामणी मोहण, भजवती, चन्द्रकला (अतिजगती), अपराजिता, हमत, भणय, अपराजित, प्रहरणी, इंदुवदना, मालणी, पंचचामर, (सवखरी) निकर, वद्धनराइ (वद्धनाराच), मदाक्रान्ता (अपरा), मघ विस्फूरणी, सादूल-विक्रीडित, सुवदना (कंति), मालती, भद्रक, ललित, क्रीडा, अरव, क्राच, भुजंग विजृम्भित का विवेचन किया है।

मिश्र या सवर ६ दो म म वित्त (छप्पय), मत्स, प्रमाण, समानारी मालती, तामर (हनूफाल), मधुभार अनुकूला छन्दो को दण्डक म घनाक्षरी, दुमिला, और मत्तगयद का तथा मात्रिक छ रा म पद्धरी, विपरजय वितल, गीया, सरसी, काव्य उधोर, चौपई, दूहा सोरठा, मोरवसा, कुंडलिया, दडिया, नीसाणी पद्मावती, दण्डक माला गाथा हापटात, छप्पय, अनुष्टुप, भिअक्खरी, पाद कुलिक चोबोला, उल्लाला सवैया, अनुप्रमगति, मरहठ्ठा हंसगति, दीपक, लीलावती गति, लरल चन्द्रवसा, लाल, कलरजण, वसतार, धार, अमतधुनि, विधृति, सुधृति, रड्डा, रहट्टा और नारी छ द सम्मिलित किए गए हैं। इस प्रकार प्रथम प्रकाश से चतुथ प्रकाश और प्रस्तार विषयक पचम अध्याय तक कुल 104 छन्दों का उल्लेख मिलता है। कतिपय छन्द ऐसे भी है, जिनका उल्लेख उपभेदों के रूप म किया गया है।

इनम स अधिकाश छन्द संस्कृत से ग्रहण किये गय हैं। दूहा, छप्पय, कुंडलिया, तोमर, भिअक्खरी, पादाकुलित आदि कतिपय छन्द और उनके भेदो पर कवि ने मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया है। चतुथ अध्याय म दूहा छन्द की 23 जातियो का विवेचन उनके लक्षण और उदाहरण देत हुए किया गया है। गाथा विवेचन मे कुशललाभ न यन्त्र माध्यम से भी 28 प्रकार की गाथाओं का गुरु लघु अक्षरो और मात्रा योग की सख्या सहित वणन किया है—उसकी एक विशेषता यह भी है कि उसने कई एक गाथाओं का नामकरण भी पूर्व प्रचलित नामो के पर्याय के रूप म किया है।

छप्पय छन्द के लक्षण और भेदोपभेदो की भी यही स्थिति है। कुशललाभ न काव्य और उल्लाला के योग स छप्पय की रचना बतात हुए, गुरु और लघु अक्षरो की सख्या के आधार पर 72 प्रकार के छप्पयो की नामावली प्रस्तुत की है।

पचम प्रकाश म कुशललाभ न काव्य शास्त्र मे प्रयुक्त छन्द प्रस्तार विधि के अन्तगत छन्दो क भेदोपभेदो के मापक प्रत्ययो प्रस्तार, नष्ट उद्दिष्ट, एक-द्वयादिलग क्रिया सख्या तथा अध्वयोग म से प्रथम चार का विवेचन प्रस्तुत किया है। इस प्रणाली को कुशललाभ ने 'सोडस करम लख्खण' (षोडशकम लक्षण) सज्ञा दी है।

काव्य शास्त्रीय संस्कृत ग्रन्थो मे उपयुक्त प्रत्यय छ प्रकार के माने गय हैं, जबकि कुशललाभ ने सख्या प्रस्तार सूची, उद्दिष्ट, नष्ट, मेर, पताका और मरकटी सनक आठ प्रकार के प्रत्यय दिये हैं। वार्णिक और मात्रिक दोनो रूपो मे इनकी सख्या 16 हो जाती है। कुशललाभ द्वारा इसे 'सोडस करम लख्खण' नाम से बोधित करने का यही कारण है। उसने तुलनात्मक दृष्टि से इन सबका सोदाहरण विवेचन भी किया है। तथा पिंगल और भरत मुनि के मत उद्धृत करते हुए उनके परिप्रेक्ष मे स्वय की समीक्षा भी दी है। अनेक अन्य आचार्यों का

नामोल्लेख भी इस प्रसंग में कर दिया गया है। इसी सन्दर्भ में 'कुशललाभ' ने पाँच मात्राओं तक के पताका यन्त्र, सर्वतोभद्रय न्त्र, अस्टदल यन्त्र, मानवा ध्वजा-यन्त्र भी उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये हैं—पर उनकी रचना की विधि का कहीं कोई उल्लेख तक नहीं किया गया है।

अलंकार

'पिंगल शिरोमणि' के छठे अध्याय में कुशललाभ ने अलंकारों का लक्षणों सहित सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत किया है। अधिकांश अलंकार संस्कृत से ही ग्रहण किये गये हैं—फिर भी अपनी सूझबूझ से अलंकारों के भेदोपभेदों और नवीन अलंकारों की व्याख्या का समावेश कर कुशललाभ ने अपनी मौलिकता के प्रदर्शन की चेष्टा की है। ग्रन्थ में संगृहीत अलंकार निम्नांकित हैं—(1) कार्यलिंग, (2) हेतु, (3) काव्यपति, (4) विध, (5) समाधि, (6) प्रतिषेध, (7) कारकदीपक, (8) निरुक्ति, (9) समुच्चय, (10) अत्युक्ति (11) परिसंख्या (12) भाव, (13) परिवृत्त, (14) स्वभाव, (15) परजायाक्ति, (16) वक्राक्ति, (17) जथासंख्य, (18) लोकोक्ति, (19) सार, (20) जुक्त, (21) दीपकालंकार, (22) अन्यान्यालंकार (23) अधिक, (24) चित्र, (25) सम, (26) विसम (विषम), (27) असगति, (28) असम्भव, (29) विभावना, (30) विरोधाभास, (31) व्याज निंदा, (32) विवक्षोक्ति, (33) गूढोक्ति, (34) व्याजोक्ति (35) पिहित, (36) सूक्ष्म, (37) विसेस (विशेष), (38) उन्मीलित, (39) अगुण, (40) अतदगुण (41) पूर्व रूप, (42) रत्नावली, (43) मुद्रा, (44) लेखा आज्ञा (45) अवस्था, (46) उल्लास, (47) विसाद (विषाद) (48) ललित, (49) सम्भावना, (50) स्लेस (श्लेष), (51) परिवार, (52) समासोक्ति, (53) विभवोक्ति, (54) सहोक्ति, (55) व्यतिरेक, (56) निदर्शना, (57) दृष्टांत, (58) दीपक, (59) तुल्य योगिता (60) उल्लेख (61) विरह (62) जाति स्वभाव, (63) विभावना, (64) विशेषालंकार, (65) उत्प्रेक्षा, (66) रूपक, (67) प्रतीप (68) अनन्वय, (69) उपमा, (70) लुप्तोपमा, (71) अभूतोपमा, (72) अद्भुतोपमा, (73) दूसणोपमा (74) भूषणोपमा, (75) दोसोपमा।

नामावली और लक्षणों के आधार पर ये शब्दालंकार और अर्थालंकारों में विभक्त किये जा सकते हैं। इसमें, अर्थालंकारों का ही बाहुल्य है—शब्दालंकार मात्र तीन—श्लेष वक्रोक्ति और चित्र ही आये हैं।

काव्यशास्त्र में चित्रालंकार एक अनोखा प्रयोग है—जिसमें क्रमिक वर्ण-विन्यास के आधार पर किसी रूप या चित्र की योजना के द्वारा अर्थ का बोध कराया जाता है। वर्णों की इस विचित्रता को आचार्य रुद्रट ने चित्रालंकार की संज्ञा दी है।

षष्ट प्रकाश के उपरान्त कुशललाभ ने कामधेनु बंध, अश्वगत बंध, कपाटबंध, षट्दलकमलबंध, चरणगूढ़ चित्र बंध, गोमूत्रक चित्रबंध, चौकीबंध, त्रिदलबंध, चक्रबंध कमलबंध, जंबुकबंध शकटबंधादि चित्रबंध काव्यों का सचित्र वर्णन किया है। कवि ने कामधेनुका चित्रबंध की व्याख्या अपने शिष्य राजकुमार हरराज के साथ प्रश्नोत्तर शैली द्वारा की है और कवित्तछन्द के रूप में निरूपित कर उसकी रचना विधि समझायी है। शिष्य के साथ गुरु की प्रश्नोत्तर शैली में निरूपण का कारण इस चित्रबंध की मूल उत्पत्ति का बताया गया है, जिसमें बृहस्पति और शुक्र (देव और दैत्य गुरुओं) के द्वारा इन्द्र को इसकी शिक्षा दी गई थी। गणना प्रस्तार भेद से इस चित्रबंध के 36 करोड़ प्रभेद बताये गये हैं तथा कोठा (वर्णकोष्ठकों) के स्थापन की विधि भी स्पष्ट की गई है। अश्वगत (अश्वगति) के आधार पर निर्मित बंध की व्याख्या कुशललाभ ने चार चित्रों के माध्यम से की है। रुद्रट ने इस चित्रबंध काव्य का उल्लेख 'तुरगम पाठ' शीर्षक से किया है। कपाट बंध में पदों के सयोजन से द्वारफलकों (किवाड़ों) के चित्र का निर्माण किया जाता है। कवि ने एक ही दोहे का अश्वगत कपाट और त्रिपदी बंधों में बांध कर उनमें चित्र प्रस्तुत किये हैं।

उक्त काव्य गत चित्रबंधों के उपरान्त कुशललाभ ने नस्टास्टक (नष्टाष्टक) रहित चित्रालंकार तथा बहिर्लापिका अन्तर्लापिका, गूढ़ोत्तरा अनेकोत्तरा, सासोत्तरा आदि छन्द मिश्रित चित्रालंकारों का उल्लेख प्रस्तुत किया है। 'नष्टाष्टक' से तात्पर्य ओष्ठ्य ध्वनि– प फ, ब, भ विहीन उच्चारण वाले वर्णों के प्रयोग से है। इस चित्रालंकार को सरपगति (सर्पगति) बंध की संज्ञा भी दी गई है।

एक ही अक्षर के प्रयोग द्वारा समस्त रूपक को प्रस्तुत करने की दक्षता (क्रिया) को एकक्खरा (एकाक्षरा) कहा है। जिसमें 26 वर्णों या 35 मात्राओं तक के प्रयोग से चित्र बन सकते हैं। गीत, कवित्त, और दूहा के ही एकाक्षरी चित्र बनाये जा सकते हैं। इसे कवि ने वार्ताओं के माध्यम से समझाया है। अन्तर्लापिका से कवि का तात्पर्य ऐसे पदों से है जिनके उत्तर की प्रतीति श्रोता या पाठक को अपने अन्तस या हृदय में हो। यदि पद के उत्तर में बाह्य उपादानों के सहयोग की अपेक्षा रहती है तो उसे बहिलापिका कहा गया है। गूढ़ोत्तरा से तात्पर्य गुप्त विधि से प्रच्छन्न उत्तर के ज्ञान से है। कुशललाभ ने इसके उदाहरण स्वरूप राजा हरराज के आमात्य फनचन्द से सबंधित किसी गूढ़ घटना को प्रस्तुत किया है। इसी अस्पष्टता को गूढ़ोत्तरा संज्ञा दी गई है। एक ही शब्द जब अनेक भावों को व्यक्त करने की क्षमता रखता है तो उसे अनेकोत्तरा कहा गया है सासोत्तरा अलंकार में अन्याय में सहस्रम (अनेक) प्रश्नों तक का उत्तर एक ही शब्द द्वारा देने की सामर्थ्य होती है। कुशललाभ ने इस चित्र का साढ़े तीन सौ दूहों का प्रमाण दिया है। इनके अतिरिक्त कतिपय ऐसे चित्रबंध काव्य हैं जिनसे सम्बंधित

चित्र या मात्र नाम ही कुशललाभ ने दिये हैं—उनके लक्षण या पठन विधि आदि का कोई विवेचन नहीं किया है। दो चित्र ऐसे भी हैं, जिनके नाम तक का निर्देश नहीं किया है।

अर्थालंकारों में सूखम (सूक्ष्म) पिहित विरोधाभास, लेखा, अवज्ञा, अनुज्ञा अद्भुतोपमा, दूसणोपमा, दोसोपमा, भूसणोपमा पर नवीन व्याख्यायें प्रस्तुत करते हुए कवि ने स्वयं के आचार्यत्व का भी परिचय दिया है। 'आम्यय' अलंकार को उसने पारंपरिक 'विरोधाभास' अलंकार का ही भेद बताया है और दोनों में ऐक्य स्थापित किया है। इसी प्रकार लेखा, अनुज्ञा, और अवज्ञा को एक ही अलंकार के विभिन्न रूपों में स्वीकार किया है।

भरत के नाट्य शास्त्र के अतिरिक्त कुशललाभ से पूर्ववर्ती अन्य सभी ग्रंथों में उपमा अलंकार के अनेक भेद मिलते हैं पर प्रस्तुत ग्रंथ में कवि ने किसी भी भेद के आधार का प्रस्तुत नहीं किया है। उपमा अलंकार के गुप्तोपमा, अद्भुतोपमा दूसणोपमा, भूसणोपमा, दोसोपमा आदि छह भेदों का विवेचन हुआ है पर कवि ने इन्हें उपमा के भेदों में परिगणित नहीं किया है। उक्त उपमाओं में मात्र अद्भुतोपमा का ही लक्षण अग्नि पुराण से मिलता है। यही सूखम और पिहित अलंकारों की स्थिति है। सूखम की व्याख्या में वह अर्थ को अन्तरंग रूप में ग्रहण करने का निर्देश देता है, बहिरंग रूप में नहीं। पिहित अलंकार में भी अर्थ पिहित (आच्छन्न) या अन्तर्निहित होता है।—यह गुप्त तथ्यों को प्रकट करता है। लक्षणों की दृष्टि से परम्परा पर आधारित होते हुए भी प्रस्तुतीकरण की शैली कवि की अपनी है। राजस्थानी रीति विवेचक ग्रंथों में यह प्रथम प्रयास ही कहा जायगा। उसके उपरान्त भी अनेक लक्षण साहित्य विषयक ग्रंथों का सृजन हुआ पर व्यापक रूप में अलंकारों पर किसी में भी प्रकाश नहीं डाला गया है।

कुशललाभ ने 'पिंगल शिरोमणि' के प्रणयन में प्राचीन आचार्यों और समकालीन कवियों के ग्रंथों से पूरी सहायता ली, यह विभिन्न अध्यायों में यथा प्रसंग किये गये उल्लेखों से स्पष्ट है। ये आचार्य हैं—भरत, पिंगल, शौणिक गुरु गुणाचार्य, वाल्मीकि बृहस्पति, शिवशेखर, कालिदास दयालभट्ट, भीम, गंगभट्ट, शंकर, काशीराम, माघ चिरजीव भट्टाचार्य के दयरदाई, लल्ल भट्ट हीरामणि, हमीर, दुरसा केसव, भोज, और बारहठ सुदर्शन। पर ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वाधिक सहायता कुशललाभ ने संस्कृत की परम्परा से ही ली है। कई एक छन्द और अलंकारों को तो उसने यथावत ही ग्रहण कर लिया है।

अलंकारों के वर्णन हेतु एक ही पद्य में लक्षण और उदाहरण देने की पद्धति अपनाई गई है। पद्य के पूर्वार्द्ध में लक्षण तथा उत्तरार्द्ध में उदाहरण दिये गये हैं। संस्कृत काव्य शास्त्रों में इसी शैली का आरम्भ जयदेव ने चन्द्रालोक में किया था। जयदेव से प्रभावित होकर ही अप्पय दीक्षित ने भी अपने अलंकार ग्रंथ

कुवलयानन्द' में इस शैली को अपनाया। कुशललाभ ने भी इसी पद्धति को अपनाया है।

शैली के अतिरिक्त अन्य भाव अलंकारों के लक्षण और उदाहरण भी पिंगल शिरोमणि में वे ही है जो कुवलयानंद और चन्द्रालोक में प्रयुक्त हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो कुशललाभ ने मात्र उनका भाषान्तर (अनुवाद) कर दिया हो। काव्यलिंग परिसंख्या, विभावना आदि 75 प्रयुक्त अलंकारों में से अधिकांश अलंकार इसी प्रकार संस्कृत से राजस्थानी में अनूदित किये गये लगते हैं।

गीत प्रकरण

गीत शब्द की निष्पत्ति 'गै' धातु में 'क्त' प्रत्यय के योग से की गयी है और उसका अर्थ कोशों में गाना, कहना, वर्णन करना या अनुवाचन करना मिलता है। राजस्थानी पिंगल शास्त्र में 'गीत' से तात्पर्य छन्द विशेष में विरचित द्वालों का समूह है जिनका विशिष्ट नियमबद्ध उच्चारण के साथ अनुवाचन किया जाता है। चारण, मोतीसर, रावल या इनसे सम्बन्धित प्रशस्ति गायक गीतों की रचना करने और उनका अनुवाचन करने में दक्ष रहे है। वे सरस, सुहृद, भावुकतापूर्ण और ओजयुक्त शैली में इन्हें पढते हैं।

गीतों में तीन चार या उससे अधिक पद्य होते हैं जिन्हें द्वालों संज्ञा दी गयी है। द्वाला सामान्यतः चार चरणों का होता है। पर तीन और चार से अधिक चरणों में भी द्वाला की रचना की जाती है। गीत के प्रारम्भिक द्वाले के प्रथम चरण में अन्य चरणों की अपेक्षा अधिक वर्ण या मात्राएं होती हैं। पिंगल छन्दों की भांति ही डिंगल गीतों में भी मात्रिक या वार्णिक छन्द भेद होते हैं। उन्हीं के समान इन्हें भी सम, विषम या अर्द्ध सम में विभाजित किया गया है। इनमें भी प्रत्येक छन्द अपने गुण और लक्षणों आदि के आधार पर नाम धारण किये हुए और नियमों में बद्ध होता है। इनमें वार्णिक गीतों की अपेक्षा मात्रिक गीतों का बाहुल्य है और उनमें भी विषम गीतों का। गीत तुकान्त और अतुकान्त दोनों प्रकार के मिलते हैं। अतुकान्त गीतों की परम्परा अति प्राचीन कही गयी है।

कुशललाभ के अनुसार उसे गीत प्रकरण का लिखने की प्रेरणा बादशाह अकबर के आश्रित सिंधु जाति के भट्ट आमिल और हामिल से मिली थी जिन्होंने दो गीत प्रबन्धों की रचना की थी। इन बंधुओं ने अपने गीत प्रबन्धों में प्रयुक्त उक्तियां भी स्वयं ने ही रची थी। कुशललाभ ने गीत प्रकरण में 40 प्रकार के गीतों पर विचार किया है। इनमें से पखालो, लघु साणोर, त्रिधानीक, घणकण्ठ आदि 17 गीतों के उदाहरण उसने समकालीन या पूर्ववर्ती रचनाओं से या गीत नायकों से सम्बन्धित प्रशस्ति गीतों से दिये हैं अवशिष्ट 23 गीतों के उदाहरण उसके स्वरचित हैं। गीतों के इन उदाहरणों में वीर शृंगार भक्ति और शान्त रस

और अद्भुत रस की प्रधानता है।

पिंगल शिरोमणि में विवेचित गीतों को मात्रिक सम, मात्रिक अर्द्ध सम मात्रिक विसम, वार्णिक अर्द्धसम के रूप में व्यवस्थित किया जा सकता है। वार्णिक गीत, मात्र दो ही हैं—जिन्हें भी लक्षणों के माध्यम से अर्द्धवार्णिक कह सकते हैं। इन गीतों का नामकरण उनकी गति, पक्ति (ढालो) अलकार, तुक छन्द मेल आदि के आधार पर किया गया है।

गीतों के लक्षण पद्य शैली में स्पष्ट किये गये हैं। लक्षण के स्पष्टीकरण में सन्देह की अनुभूति होने पर कवि ने गद्य का आश्रय ग्रहण कर लिया है। कतिपय गीत ऐसे भी मिलते हैं, जिनके उदाहरण वर्णित लक्षणों से मेल नहीं खाते। कतिपय गीतों मे मात्रिक या वार्णिक श्रेणी का सकेत नहीं दिया गया है, पर सम विषम प्रस्तार का प्रयोग अवश्य यत्र-तत्र किया गया है। कुछ गीत ऐसे भी हैं, जिनका नामोल्लेख व्याख्या सहित अनेक भेदों के लक्षणों सहित मिलता है। गीत लक्षणों की भाषा प्राय सावतिक है। कुछ गीतों को छन्दों के समान मानकर भी उनमें शका प्रस्तुत करते हुए प्रश्नोत्तर द्वारा उनका समाधान प्रस्तुत किया गया है।

डिंगल नाममाला

कुशललाभ कृत 'डिंगल नाममाला' को राजस्थानी भाषा का प्राचीनतम नाम सज्ञक कोष या पर्याय कोष कहा जा सकता है। इसमे राजा, मत्री जोधा, हाथी, घोड़ा, रथ, वृषभ (वृषभ) तरवार कटार, फरी, बरछी तीर, धरती, आकाश, पाताल अपसरा, किन्नर, समुद्र, पर्वत, ब्रह्मा विष्णु शिव देवादिक के एकाधिक पर्याय नाम अकित किये गये हैं जिनकी कुल स० 389 है।

इनमे कतिपय संस्कृत तत्सम कुछेक तद्भव, देशज और कुछ पद विपयय प्रणाली द्वारा निर्मित शब्द है। कही कही विदेशी भाषा के शब्दों को भी पर्याय रूप मे ग्रहण करके कोष म प्रतिष्ठित किया गया है—जो कही संस्कृत या संस्कृत से उद्भूत शब्दो के साथ विदेशी भाषाओं के शब्द युग्म निर्मित किये गये है। पद विपयय प्रणाली द्वारा निर्मित शब्दावली में गात्र शैल (शैलगात्र), वाहण शभु (शभुवाहण), मुख काल (कालमुख), चरणचतु (चतुश्चरण), गध मद (मद गध), तथा विदेशी शब्दों के सहयोग से निर्मित शब्द युग्मो मे फौज आवरण, फौज गाहण आदि शब्द उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं। कवि ने पर्याय नाम सकलन में अपनी व्युत्पत्तिमूलक सूझ-बूझ का पर्याप्त परिचय दिया है। इसे एकार्थवाची श्रेणी के कोष की सज्ञा दी जा सकती है। इसमे प्राप्त समानार्थी शब्दों में एक ही अर्थ और पदार्थवाची शब्दों का उल्लेख हुआ है।

5
साहित्यिक अध्ययन

कला पक्ष भाषा और शैली

कुशललाभ की काव्य कृतियो म ढोला मारवणी री चौपई और 'माधवानल काम कदला चौपई' सवप्रथम ज्ञात रचनाए रही हैं। ढोला मारवणी री चौपई' म चौपइया का छोडकर जो उसकी स्वय की कृति कही जा सकती है दोहा सर्मावत शेष भाग अपभ्रश कालीन प्राचीन प्रबधो से या लोक प्रचलित पारम्परिक लोका ख्यान स ग्रहण किया गया प्रतीत होता है। कुशललाभ न स्वय इस बात का सकेत ढोला मारवणी री चौपई' मे प्रारम्भ म ही दोहा घणा पुराणा अछ", चौपई बध कीधा म पछइ' लिखकर दिया है। ऐसी स्थिति म दोहो की भाषा कुशललाभ के काल से बहुत पूर्व की निश्चित होती है।

'ढाला मारू रा दोहा' ग्रथ का सपादन करन वाले सपादक त्रय न इन दोहो की भाषा को माध्यमिक राजस्थानी' कहा है। डा मोतीलाल मेनारिया ने इसे डिंगल भाषा माना है। प गौरीशकर हीराचन्द ओझा न इसे तत्कालीन बोल चाल की राजस्थानी और डा शार्लोत वादविल न प्राचीन मारवाडी गुजराती की सज्ञा दी है।

कुशललाभ का अपभ्रश साहित्य का अध्ययन अत्य त सूक्ष्म और व्यापक था यह उनके द्वारा विरचित अधिकाश काव्यो की प्राचीन परम्परा से और 'ढाला मारवणी चौपइ' मे दूहो से सम्बधित उक्त कथन से ही स्पष्ट है। अत यह स्वाभाविक है कि उनकी रचनाओ पर परम्परागत पाडित्य की छाप अवश्य ही रही होगी। माधवानल काम कदला चौपई' मे भी एस अनेक दोह सकलित हैं, जिन्ह कुशललाभ ने ढोला मारू रा दूहा के प्राचीन सस्करण या उसीक समान किन्ही प्राचीन सन्देश काव्यों से यथावत उद्धत किया होगा। इस प्रकार के दोह और गाथाए अ य प्रेमकथानको के प्राचीन रूपो और अपभ्रश कालीन सदश काव्यो म भी खोजी जा सकती हैं। यह सम्भव है कि इस रचना मे भी अपनी भाषा को अपन काल से प्राचीन दिखाने का उनका उद्देश्य रहा हो और इसीस उसन इस प्रकार के दोहा को यथावत उद्धत किया हो।

ढोला मारू री चौपई मे विरचित चौपइया म भी दोहो के अनुरूप भाषा के

निर्वाह का प्रयत्न किया गया है, लेकिन अन्तर स्पष्ट हो जाता है। इनकी भाषा का सरलीकरण की ओर अग्रसर हुई डिंगल का ही रूप कहा जा सकता है। पिंगल शिरोमणि, महामाई दुर्गा सातसी जगदम्बा छन्द या भवानी छन्द में विशुद्ध डिंगल भाषा का प्रयोग स्पष्ट दिखाई देता है। अन्य ग्रंथों में तदयुगीन बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है जिसका प्रयोग धर्म प्रचार हेतु प्रायः सभी जैन संत करते आये हैं। यहाँ कुशललाभ के ग्रंथों में मिलने वाली अन्य भाषागत विशेषताओं का विवेचन किया जा रहा है—

1 अइ, और अउ के प्राचीन प्रयोग

2 'ण' और 'त' ध्वनियाँ

3 मधुरता के लिए शब्दान्त में 'डा' या 'डी' प्रत्यय का प्रयोग

4 स त ज के आदि निपातों का प्रयोग

5 पादपूरणार्थ अन्त में ह ज, य र, का प्रयोग

6 क्रियाओं का अनुनासिकीकरण— यथा भरति सहति, आदि

7 शब्दों में द्वित्ववर्णाश्रित प्रयोग यथा तुल्लउ, तुग्ग, मज्झ

8 श और ष के स्थान पर स का प्रयोग

9 मूर्धन्य 'ळ' ध्वनि के संकेत का अभाव

10 ख के स्थान पर मूर्धन्य 'ष' चिह्न का प्रयोग जिसकी ध्वनि 'ख' ही होती थी

11 भूतकालिक बहुवचनात्मक क्रिया शब्दों पर अनुनासिक्य बिन्दु का प्रयोग

कुशललाभ की भाषा में इस प्रकार हम जहाँ पुरानी भाषा के रूप की झलक देखते हैं, वहीं अपने काल के विकसित नवीन रूप की भी।

अपनी परिव्राजक प्रवृत्ति के कारण अर्जित ज्ञान और तदयुगीन परिनिष्ठित भाषा युक्त साहित्यिक परम्परा के अनुसार उनके साहित्य में पास पड़ोस की गुजराती, सिंधी, पंजाबी मालवी भाषाओं की शब्दावली ने भी प्रवेश पा लिया है। उसमें कहीं मारवाड़ी, मेवाड़ी, तो कहीं माडी, मालवी या ढूंढाड़ी के शब्द रूप भी काव्य की शोभा बढ़ाते नजर आते हैं। शब्दावली में तद्भव और देशज शब्द सम्पदा का बाहुल्य है— इनकी तुलना में तत्सम शब्दावली अत्यल्प है। अरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्द भी इन काव्यों में दिखाई दे जाते हैं पर वे गिनती के ही हैं। कुशललाभ के काव्यों की विषयवस्तु सनातन है अतः एम साहित्य के लिए परम्परागत साहित्य का शब्द भंडार ही पर्याप्त था।

देशज शब्द बाहुल्य और पार्श्ववर्ती बोलियों के नाना रूप शब्दों के मणिकांचन संयोग ने इन काव्यों की भाषा में विशेष माधुर्य और मार्दव की सृष्टि कर दी है। देशज शब्दों के कतिपय नमूने हैं—साहियाँ, ओलग, परियल, खात झाझी, रीठ, धोवड, डोभू, सरली मागणहार, वाहला, पारयउ, अमूझइ नाठउ, अवखर, आउध, आरिसो, आतरो, उचाळो, गवाखि, जमीस, झाळ नाह दुकाल, परणी-

पूठई पूतली, मावीत्र, भाणेजा, बीज वैरागण वाजीत, सोहामणी, सिरहर, सूडा आदि।

पाश्ववनी इतर प्रा तीय भाषा शब्दावली के नमूने चाहदी चगा, लज्ज भज्ज से रत्ता नोनू किथे, (पजाबी), ऐम जेम, केम, तेडऊ, मोकळइ, नू, घरना, थई, मूकी गयु, एललू, माणस पामी जवा (गुजराती), पठावइ जिम, तिम इम, आए सुनाए चलाए (व्रज)।

सम्पूण का य ग्रथो मे गिनती के जो विदेशी शब्द मिलते हैं, वे हैं—दरबार साहिब सलाम, कागल, दाम अरदास, मुसताक, वगसो, फतह, नजर, ग्वास, फमाण फौज दाम दीनार फदिका जुदा नफर, खुरसाण जीन निसाण हलाल महल फुरमाण हवीयत आदि। पर्याय और अनुरणात्मक शादावली की भी प्रचुरता उनके का य मे देखने को मिलती है जिन्होंने काव्य सौदय मे वद्धि तो की ही है—साथ ही जो कुशलनाभ के भाषाज्ञान का द्योतक भी है।

पर्याय शब्द—राय राइ राव राऊ राजा, नरपति, भूपति, नपति, धणिया स्वामी नाह वल्लहा, वल्लह वालभ, प्रिय, प्रियतम, प्रीतम, प्रीउ प्यारा, मयणा, सज्जन, साजण, मायण, प्राणप्रिय, प्राण अधार कत, भरतार आदि।

कतिपय शब्द ऐसे भी है, जिनकी पुनरावत्ति शब्द के अथ को विशेष प्रभाव शाली बनाने की दष्टि से की गयी है—यथा—लस्ट-पुस्ट मागीलागी तरल सरल, थरथरथ जरा जुफ्न, दाम दलेल साणदाण, खलभल डब डब बळवळती—

अनुरणात्मक शादावली—खडहड, धडहडी, गडडई, कडडति, बडक्कई, झलहलइ गहगहइ, महमहइ विलविलइ।

पहले बताया जा चुका है कि कुशललाभ के साहित्य की भाषा मध्यकालीन साहित्यिक राजस्थानी और लोकभाषा का मिश्र रूप है और पिंगल शिरोमणि आदि म डिंगल का विशुद्ध रूप। ढोला मारवणी चौपई और माधवानल काम-कन्दादि का य अपभ्र श की परम्परा के का यग्रथ है—अत इनमे अपभ्र श की छाया का होना स्वाभाविक है। अय का या मे जन सतो की परम्परानुसार बोल-चाल की राजस्थानी भाषा के दशन होत हैं। अपभ्र श के कतिपय श द नीचे दिये जा रहे हैं, जिनका कुशललाभ ने काव्यो म प्रयोग हुआ है।

भगाण, याण, णाटक पज्ज वज्ज, धज्ज, पठिज्ज, कज्जळ, अट्ठ उअट्ट यट्टां मन, मयण मुद्ध लुद्धो, सिद्धा, दीध्धा, जुद्ध, हवद्ध, हत्थ कत्थ आदि।

कुशललाभ ने यत्र-तत्र सस्कृत भाषा के पाडित्य और विविध विद्याओ के अध्ययन से प्राप्त शब्द सयोजन द्वारा अपन साहित्य को सारगर्भित बना दिया है। कई स्थल ऐसे हैं, जहा उन्होंने सस्कृत के पूरे के पूरे प्राचीन सुभाषित श्लोक ही दे दिय हैं, जो उनके सस्कत ज्ञान के साक्षी बन सकते हैं। माधवानल कामकदना चौपई मे ही ये विशेष रूप से प्रयुक्त हुए हैं।

प्रिया स्मृत्वा सदय स्फुटित हृदयो मन्मथ वशात।
अहा ! हा हा ! हा हा ! हरि हरि मृत कोऽपि पथिक ॥
(मा० का० चौ० 573)

विद्वत्व च नृपत्व च, नैव तुल्य कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥ (मा० का० चौ० 191)
आज्ञा भङ्ग नरेन्द्राणा महता मानमर्दन।
पृथक शय्या च नारीणा अशस्त्रवध उच्यते ॥ (मा० का० चौ० 19)

भाषा के सौष्ठव मे लोक प्रचलित कहावतो-मुहावरो का यथोचित प्रयोग सदैव वाछित रहता है। कुशललाभ की भाषा प्रमुख रूप से लोक व्यवहार की भाषा ही है—अत उसमे लोकप्रचलित कहावतो मुहावरो का स्वत आ जाना स्वाभाविक है। इनसे काव्य मे प्रसाद गुण की वृद्धि हुई है जिसने काव्य को सहज बोधगम्य बना दिया है और साथ ही रस परिपाक मे सहयोग दिया है। आलोच्य काव्यो मे प्रयुक्त मुहावरो से युक्त कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं।

(1) गम गोवर मन माह न राखि (ढो० मा० चौ० 28)
(2) मैं सिधावउ सिध करउ (मा० का०)
(3) लूण हराम करे सुहिव (ढो० मा० चौ० 114)
(4) जब थी हम तुम्ह बीछड्या तब थीनीद हराम (मा० का० चौ० 443)
(5) हूवा राम राज्ये जीतीवी सद्दही (म० दु० सा०)

इसी प्रकार हँसी उडाना, चाह खोजना, बाट जोहना, दिन गिनना, जले पर नमक छिडकना, आँख न लगना, हवा होना कलेजा फटना, घात मेलना, हाथ मलना, दूध का मेह बरसना जैसे अनेक मुहावरे काव्य मे प्रयुक्त हुए मिलते हैं।

कहावतो के उदाहरण

'रोवणछेह विल्लगिइ, अवसि अमगल होइ।"
"नीद तु नावइ प्रिहू जणौ, कहू कामिणि किहाँ'
"धण सतहा, बहु रणाँ, वयर घटुक्कइ जिहाँ ॥399॥
'वेलि विछोह्या पानडा दिन दिन पीळा होइ"
"नारी नरवइ ततजल मर पत्थर केकाण,
"अै सातेइ आँधळा, फेरणहार सुजाण' ॥ 521॥

शब्द शक्तियाँ

कुशललाभ ने अपनी कृतियो मे अभिधा, लक्षण और व्यजना——तीनो शब्द शक्तियो का यथोचित प्रयोग किया है। अभिधात्मक उक्तियों का ही उनमे प्राचुर्य है— पर लक्षणा और व्यजना के प्रयोग भी विरल नही हैं। इनके प्रयोग से भाषा मे ओज,

माधुर्य और प्रसाद जैसे गुणों की अभिवृद्धि हुई हैं। नीचे लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्तियों के प्रयुक्त उदाहरण दिये जा रहे हैं—

लक्षणा

हीयड़ा भीतरि पइसि करि, उग्या सज्जिर रूपक्ख।
नित सल्लइ नित पल्लवइ, निच निसल्ला दुक्ख॥
(मा० का० क० 346)

व्यंजना

न मए रून विहीय, अमगल, होइ सुम सब सिद्धि।
विरहि धम कुंविया, गलती ए मुज्झ नयणाइ॥
(मा० का० क० 364)

गुण

कुशललाभ के समग्र काव्य में प्रसाद गुण का प्रामुख्य है। कष्ट कल्पना का आश्रय पांडित्य प्रदर्शन की भावना या अस्पष्टता की भावना के दर्शन कहीं नहीं होते। तद्युगीन भाषा और भाव भंगिमा को समझने वाला कोई भी सुधी पाठक उनके काव्य में रस ले सकता है।

सखी ए! आमण दूमणी, मारगि ऊभी काइ।
जेऊ जीवन वल्लहा, तउ चलिया जाइ॥ (मा० का० क० 347)

माधुर्य गुण युक्त वर्णन में ट ठ ड ढ पंचम वर्णों के अतिरिक्त क से म पर्यन्त स्पर्श वर्णों, ह्रस्वस्वरों, अल्पसामासिक पदों तथा अनुनासिक ध्वनियों की व्यवस्था रहती है। कुशललाभ के सदृश कवि के ग्रन्थों के प्रसंग में यह गुण दर्शनीय है—

कंता मइ तूं बाहरी, नयण गमाया रोइ।
हत्थाली छाला पड्या नीर निचोइ निचोइ॥ (मा० का० क० 437)

श्रृंगार रस के वर्णनों में वैसे भी माधुर्य गुण का मिलना स्वाभाविक ही है।

शैली

कुशललाभ के साहित्य में हम राजस्थानी साहित्य की परम्परा के अनुसार चारणी, जैन और लौकिक तीनों ही प्रकार की शैलियों के दर्शन हो जाते हैं—पर जैन और लौकिक शैली का ही इनमें प्राचुर्य है। इन परम्पराओं का पालन करते हुए कुशल लाभ ने जहाँ सरल शैली का आश्रय ग्रहण किया है, वहीं अलंकृत और गूढ़ शैली प्रयोग की भी कमी नहीं है। कथन की दृष्टि से उत्तम, मध्यम और अन्य पुरुष,

तीनो ही शैलियो का प्रयोग करते हुए भी प्रधानता अन्य पुरुष शैली की दिखाई देती है। कवि के साहित्य मे इसी कारण वर्णनात्मकता का आधिक्य है। रीति के आधार पर कुशललाभ ने वैदर्भी, गौडी और पांचाली तीनो ही शैलियो का प्रयोग किया है।

कुशललाभ ने लोक शैली को अपनाते हुए अपने कथा काव्यों मे लोक मानस की यथार्थ झांकी को प्रस्तुत किया है और उस युग की वाणी को मुखरित किया है। लोक जीवन की सहज स्वाभाविक भावनाएँ उसने प्रेमी युगल के माध्यम से प्रकट की हैं। एक आचार्य की अपेक्षा यह जन कवि ही अधिक है। उसने लोक मे प्रचलित अनेक प्ररूढियो का लौकिकता के संस्पर्श के साथ अपनी रचनाओ म प्रयोग किया है। ये प्ररूढियाँ हैं, स्वप्न प्ररूढि, शुक प्ररूढि, और योगी-योगिनी प्रादुर्भाव प्ररूढि आदि।

माधवानल कामकदला चौपई ढोला मारवणी चौपई और भीमसेन हंसराज चौपई मे यह संदेश रासक के समान संदेश प्रेषण शैली को ग्रहण करता दिखाई देता है। इन प्रेम-कथाओ का श्रेष्ठ अंश भी इनमे निहित प्रेमी युगलो के विरह वर्णन और उनमे संदेशो के पारस्परिक आदान प्रदान के प्रसंगों को ही कहा जा सकता है। माधवानल काम कदला चौपई म विरह विदग्ध माधव के द्वारा चटाऊ के माध्यम से कन्दला के पास पत्र प्रेषण और कदला का पत्रोत्तर ढोला मारवणी चौपई म प्रिय वियोग म क्रौंच पक्षियो के माध्यम से मारवणी द्वारा ढोला को अपनी विरह-वेदना से समन्वित संदेश प्रेषण का प्रयास मालवणी के द्वारा पूगल के लिए प्रस्थान कर गए ढोला को मनाकर लौटा लाने हेतु शुक के द्वारा संदेश प्रेषण और 'भीमसेन हंसराज चौपई म मदन मजरी के द्वारा शुक के माध्यम से भीमसेन के पास प्रणय प्रस्ताव के प्रेषण का प्रयास इसी शैली के अंतर्गत परिगणित किए जा सकते है।

'माधवानल काम कदला चौपई' और स्थूलिभद्र छत्तीसी' म कुशललाभ ने प्रेम की सात्विकता और प्रगाढता के निरूपणार्थ दृष्टांत शैली का आश्रय ग्रहण किया है, तो स्ववचन की पुष्टि स्वरूप ढोला मारवणी चौपई और माधवानल काम कदला चौपई' मे सूक्ति-पद शैली का अपनाते हुए पुरातन प्राकृत गाथाओ का आश्रय लिया है।

कुशललाभ ने अनुभूति की सबल अभिव्यक्ति के लिए संवाद शैली को ग्रहण किया है। प्राय समग्र प्रेमाख्यान काव्य संवादमय बन गये हैं। इससे रसिक लोगो के लिए ये ग्रन्थ रुचिकर हो गये हैं। माधवानल एव काम कदला और ढोला और मारवणी के पारस्परिक प्रेमालाप, प्रश्न पहेलियो और अन्य लघु प्रसगो म भी संवाद बड़े सहज और चुटीले है। ऐसे ही प्रसगो का संयोजन कर कुशललाभ ने 'माधवानल काम कदला चौपई मे इन्द्र और अप्सरा जयन्ति, काम कदला और

उसकी माता ढोला मारवणी चौपई' में राजा पिंगल और प्रधान, उमा और सावन्तसिंह ढोला और मालवणी, मारवणी और उसकी सखियाँ, ढोला और ऊँट योगी और ढोला तेजसार रास' में तेजसार और योगी, तेजसार और राक्षस तेजसार और व्यन्तरी तेजसार और उसकी माता के मध्य संवाद, 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' में स्थूलिभद्र और कोशा का संवाद, 'भीमसेन हंसराज चौपई' में योगी और मन्त्र मजरी तथा भीमसेन, हंस और हसिनी, 'महामाई दुर्गा सातसी' में देवी और महिषासुर संवाद देवी और देवताओं के मध्य संवाद, शुभ और सुग्रीव, सुग्रीव और देवी चण्ड मुण्ड और देवी और रक्त बीज, तथा 'जिनपालित जिन रक्षित रास' में जिनपालित, जिनरक्षित और मलग तथा देवी के मध्य संवादों की सृष्टि कर कथा प्रवाह में आकर्षण पैदा किया है।

कुशललाभ ने ढोला मारवणी चौपई 'माधवानल काम कदला चौपई और 'स्थूलिभद्र चौपई' में उपालम्भ शैली का उपयोग किया है। काव्यों में यह शैली प्राय प्रिय के प्रेम शैथिल्य की अवस्था में प्रेमियों द्वारा प्रेम की सुधि दिलाने हेतु अपनाई गई है।

काव्यों में प्रयुक्त छन्द

कुशललाभ साहित्य शास्त्र के पंडित थे। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, डिंगल, पिंगल, और कतिपय लोक भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। भाषा और साहित्य के आचार्यों के सान्निध्य में रहकर उन्होंने विविध प्रकार की विद्याओं का अध्ययन किया था। इन्हीं विद्याओं में छन्दशास्त्र भी एक है जिसके वह सुविज्ञ पंडित थे। उनके छन्द शास्त्र के ज्ञान का परिचायक ग्रंथ पिंगल शिरोमणि है जिसमें उन्होंने पिंगल और डिंगल के छन्दों का विशद निरूपण किया है जिसका परिचय पहले दिया जा चुका है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के छन्द ग्रंथों का भी सम्यक अवलोकन किया था।

कुशललाभ ने अपने समग्र साहित्य में जिन छन्दों का प्रयोग किया है, वे इस प्रकार हैं—

माधवानल कामकन्दला चौपई में कुशललाभ ने वस्तु चौपई, गाहा, श्लोक (अनुष्टुप) दूहा, सोरठा मालिनी शार्दूल विक्रीडित कवित्त, पाधडी तथा शिखरणी छन्दों का प्रयोग किया है, पर सर्वाधिक प्रयोग दूहा और चौपई का ही हुआ है। शेष छन्द नाम मात्र के हैं।

ढोला मारवणी चौपई', तेजसार रास चौपई, भीमसेन हसराज चौपई' आदि प्रेमाख्यानक या चरिताख्यानक रचनाओं में दूहा चौपई, काव्य वस्तु सोरठा गाथा आदि का और 'दुर्गा सातसी' जैसी स्तुतिपरक रचनाओं में छप्पय कवित्त हणुफाल, नाराच, अर्द्धनाराच, भुजंगी, मोतीदास, पाधडी, गाथा,

मोटक, रेमक (रोमक) लीलावती त्रिभंगी, आर्या आदि में साथ साथ सावझड़ा और दूहा मावझड़ा जैसे छन्द प्रयुक्त हुए हैं। नवकार छन्द, जगदम्बा छन्द, या भवानी छन्द तथा गोडी पार्श्वनाथ छन्द में कवि ने दूहा, चौपई और हाटकी छन्दों का उपयोग किया है। मालिनी, शिखरणी, शार्दूल विक्रीडित, गाथा आर्या और अनुष्टुप जैसे छन्द संस्कृत की परम्परा में तथा गाहा दूहा, सोरठा वस्तु, पाधड़ी, षउपई जैसे छन्द प्राकृत और अपभ्रंश की परम्परा से ग्रहण किये गये हैं।

इससे स्पष्ट है कि संस्कृत का पांडित्य दिखाने के लिए कुशललाभ ने शास्त्रीय छन्दों की रचना अवश्य की है पर अधिकांश वर्णन मागध छन्दों में है जो आभीर संस्कृति की विशेष देन रही है। सोरठों और दूहों की छटाएँ अपने पूरे प्रकाश से देदीप्यमान दीखती हैं। इनका श्रेय कहाँ तक कुशललाभ को दिया जा सकता है, यह शोध का विषय है। हाँ, वर्णनात्मक अंशों में चौपई छन्द की रचना उनकी अपनी है जो तत्कालीन वर्णन एवं चरित्र ग्रंथों की शैली है। इसमें कोई विशेषता नहीं है।

कुशललाभ द्वारा प्रयुक्त कतिपय छन्दों के लक्षण नीचे दिये जा रहे हैं।

गाहा प्राकृत काल का अति प्राचीन छन्द है। संस्कृत में इसे गाथा या आर्या नाम दिया गया है। प्राकृत पैंगलम में गाहा को सत्तावन मात्रा का छन्द कहा गया है, जिसमें प्रथम चरण में 12 दूसरे में 18 तीसरे में 12, और चौथे में 15 मात्राएँ होती हैं। इसके सत्ताईस भेद माने गये हैं। माधवानल कामकन्दला चौपई' में कवि ने प्राकृत और अपभ्रंश काल में प्रचलित गाथाओं का यथावत गुम्फन किया है, पर अन्य रचनाओं में उसने स्वरचित गाथाओं को भी स्थान दिया है।

चौपई' छन्द की प्रमुखता उत्तर अपभ्रंश काल में हुई थी, पर इससे पूर्व भी सरहपा आदि बौद्ध कवियों ने 'चौपई' का प्रयोग किया था। पद्धति और छप्पय छन्द भी इसी प्रकार अपभ्रंश काल से प्रयुक्त होते आये हैं। पद्धड़ी या पज्झटिका अपभ्रंश काल का मुख्य छन्द रहा है। 'प्राकृत पैंगलम्' के अनुसार इसके प्रत्येक चरण में चार चतुर्मात्रिक गणों की रचना की जाती है, जिनमें अन्तिम चतुष्कल 'पयोधर' (जगण) (होना आवश्यक है)। स्वयंभू छन्दस (6-160) में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है—'सालह मत्त पाआउलअ (छ च छ) सविरइअ सकलुअ। (त चे अ) चआर चउक्क, त जाणसु पद्धडिया धुवअ।

छप्पय छन्द भी अपभ्रंश काल का ही छन्द है। 'प्राकृत पैंगलम्' में इसे रोला और उल्लाला के योग से बना छन्द कहा गया है। रोला छन्द की गण-व्यवस्था (11) बताई गई है। इसके प्रत्येक चरण पर 11 13 पर यति होती है। उल्लाला के दो चरण 28, 28 मात्राओं के होते हैं और प्रत्येक चरण में 15-13 पर यति होती है। हेमचन्द्र ने इसे मागध कवियों (भट्टों) का प्रिय छन्द कहा है, जिसमें ये प्रशस्ति गान करते थे। वीर-काव्य के रचनाकारों का भी यह

अतिप्रिय छन्द रहा है।

वस्तु छन्द भी अपभ्रंश का ही है। इस वस्तु ही माना जाय तो इसके चार पद षटपदी के प्रथम चार पदों के अनुरूप 24, 24 मात्राओं के होते हैं। इसी के अन्य नाम कन्त्र[1] रड्डा भी मिलते हैं। जैन साहित्य में इसका प्रचुर प्रयोग हुआ है। भरतेश्वर बाहुबली रास में मात्रादि के इन्ही लक्षणों से युक्त प्रयुक्त छन्द को रड्डा कहा गया है। हेमचन्द्र ने भी रड्डा को स्पष्टतः वस्तु कहा है (छन्दोनुशासन 5/23)। कुशललाभ द्वारा प्रयुक्त वस्तु छन्द के प्रथम चरण में 10,13, द्वितीय में 10, 10 8 तृतीय में 10, 17 चतुर्थ में 13, 11 और पाँचवीं में 13, 11 मात्राएँ दी गयी हैं। रड्डा के अनेक भेद हैं। तालविनी नामक एक भेद में दूसरे और तीसरे चरणों में 28, 28 मात्राएँ हैं, प्रथम में 16+7=23। एक अन्य भेद चारुनेत्री में 28 28 के द्वितीय चरण और प्रथम चरण में 15+7=22 मात्राएँ बैठती हैं। सम्भवतः वस्तु के लिए यही भेद व्यवहृत हुआ है। कुशल लाभ के द्वारा प्रयुक्त वस्तु छन्द से यह बहुत निकट है।

मालिनी छन्द का एक अन्य नाम मंजु मालिनी भी मिलता है। यह एक गणवृत्त है। इसमें प्रत्येक चरण में न न म य य गणानुसार 7, 8 अक्षर तथा 22 मात्राएँ होती हैं (छन्द प्रभाकर पृ० 190) और शिखरणी छन्द में य म न स भ ल ग गणानुसार चरण के प्रथमार्ध में 6 और उत्तरार्ध में 11 अक्षर होते हैं (छ० प्र० पृ० 181)।

श्लोक (अनुष्टुप) के चारों पदों में पाँचवाँ वर्ण लघु और छठा वर्ण दीर्घ हो और समपदों में सातवाँ वर्ण भी लघु हो इसके अतिरिक्त अन्य वर्णों के लिए कोई नियम न हो, उसे श्लोक कहते हैं (छन्द प्रभाकर, पृ० 130)।

दूहा—दोहा के विषम चरणों में 13 और सम चरणों में 11 मात्राएँ होती हैं। मात्रा, वर्ण, चरण ढाल, विषय वर्णन आदि की दृष्टि से अनेक भेदों का प्रयोग कुशललाभ के साहित्य में हुआ है।

सारसी—छन्द में 27 मात्राएँ होती हैं, जिनमें 16,11 पर यति और अन्त में गुरु होता है।

त्रिभंगी—इसके प्रत्येक पाद में 32 मात्राएँ होनी हैं। जिनमें 10,8,8 6 पर यति, और अन्त में गुरु वर्ण होता है।

त्रोटक—के प्रत्येक चरण में चार सगण (IIS) होते हैं। कवि ने इसका प्रयोग करते समय गणों के गणना निर्वाह के नियमों की चिन्ता नहीं की है।

सोरठा—यह दोहे से एकदम उल्टा छन्द है। इसके विषम चरणों में 11

1 सदेश रासक भूमिका डॉ० विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी, पृ० 105
2 आदि काल के अज्ञात हिन्दी रास काव्य डॉ० हरिवल्लभ भायाणी पृ० 35

और सम चरणो म 13 मात्राएँ होती हैं, तथा प्रथम और तीसरे चरण की तुक मिलती है।

सगीतात्मकता

विविध प्रकार के छन्दा म रचना करत हुए कवि ने जहाँ अपन काव्या को शास्त्रीय तथा साहित्यिक रूप दिया है, वही जनरुचि के अनुरूप बनान और अपने धर्म प्रचार की दृष्टि से तत्कालीन प्रचलित लौकिक और शास्त्रीय सगीतात्मक कथा को भी अपनाया है। इसके लिए उसन सगीत शास्त्रीय रागो और ढाला का आश्रय लिया है। इनके प्रयोग से काव्य न गेय रूप ग्रहण कर लिया है। रागो म आसावरी, रामगिरी, गोडमलहार, श्री खमायती, सारठी, सामेरी, केदार, गोडी, गूड गोडी, गुडी गुजराती म यासिरी तथा हुसैनी प्रयुक्त मिलती ह तो ढालो म बेली नी ढाल, मृगाक लेखानी ढाल, रहुनी ढाल, गीता छन्दा नी ढाल, जतीनी ढाल, डूगर दानी नी ढाल च्यवीसनी ढाल, सधिनी ढाल, बाहुली ढाल, सिंध नी ढाल, सामेरी ढाल और उल्लाला ढाल म रचना की गयी है। इनस यह निष्कर्ष निकलता है कि कुशललाभ सगीतशास्त्र का ज्ञाता हान के साथ ही प्राचीन जैन परम्परा का एक दक्ष धम प्रचारक भी था। भीमसन हसराज चौपइ पूज्यवाहण गीत, पार्श्वनाथ दशभव स्तवन म मुख्य रूप से रागा और ढालो के प्रयाग किय गये है।

राग आसावरी प्रात कालीन राग के रूप म प्रसिद्ध है—इस बात को ध्यान म रखत हुए कुशललाभ न भीमसेन हसराज चौपई' मे (चौ० स० 219) प्रात-कालिक वणन तथा श्री पूज्य वाहण गीत म (छ० 1,11) स्तुतिमान इसी राग मे किया है। रामगिरी (वर्तमान रामकली या रामकरी) प्रात कालीन सधि प्रकाश राग के रूप मे प्रसिद्ध है—जिसम भक्ति, निर्वेद की भावना के साथ वियोग श्रृगार का वणन किया जाता है। कुशललाभ ने 'पूज्यवाहण गीत म भक्ति और निर्वेद के उपदेश का गान तथा 'भीमसेन हसराज चौपइ' (चौ० 201 202) म भीमसन की वियोगावस्था म निर्वेद की अभिव्यक्ति इसी राग के माध्यम से कराई है। गूड मल्हार (गोड मल्हार) ऋतुपरक राग है। वर्षा ऋतु मे गाये जाने वाले इस राग मे श्रृगारिक वणन प्रस्तुत किया जाता है—'पूज्यवाहण गीत' (छ० 61 67) म राग के उक्त लक्षणो का पालन करते हुए इस राग से आबद्ध छन्दा म वर्षा ऋतु का वणन ही प्रस्तुत किया गया है। श्री राग की प्रसिद्धि सायकालीन सधिप्रकाश राग के रूप म है। इसम भक्ति और निर्वेद की अभिव्यक्ति की जाती है। कवि ने 'जिनपालित जिनरक्षित रास' मे निर्वेद भाव के जागरण हेतु दक्षिण वनखण्ड के वीभत्स वर्णन प्रस्तुत किय हैं। खमायती (खभावती, खभायची) तथा सोरठ या सोरठी रागा का प्रमुख रस रसराज श्रृगार है। कुशललाभ न पार्श्व

नाथ दशमत स्तवन' म प्रभावती या और 'भीमसेन हसराज चौपई' म सारठी राग का प्रयोग शृगारिक वणना क लिए ही किया है।

राग केदारो लोक प्रचलित राग रही है, जिसका प्रयोग अनेक भक्त कविया न अपन पदो म किया है। यह एक साध्यकालीन राग है तथा केदारी और नट केदार से भि न है। केदारी 'दीपक' राग की, पाँचवी रागिनी है और नट केदार षाडव जाति का एक सवर राग है, जो रात क दूसर पहर म गाया जाता है।

सामेरी (सावेरी), कदार, गोडी, गूड गोडी, गूडी-गुजराती और ध यासिरी, हुसैनी का अब कोई प्रचार नहा है। ध यासिरी और केदार के शास्त्रीय प्रयाग अवश्य मिलत हैं।

काव्य दोष

काव्य म मुख्य अथ की प्रतीति म जहा बाधा हो, वहाँ काव्य दोष माना जाता है। बाधा उत्प न करने वाले ऐस दोषो मे शब्दो का अशुद्ध प्रयोग परम्परा विरुद्ध आचरण आदि की परिगणना होती है। राजस्थानी मे इस प्रकार के ग्यारह दोष माने गये हैं, जिनके नाम हैं। अध, छवकाल, हीन, निनग, पागलो, जात विरोध, अपस, नाल छेद, पपलूट, वहरो और अमगल। इसमे कोई सदेह नही कि समय कवि सदा सतक होकर काव्य रचना करते हैं फिर भी कही न कही उनसे भी त्रुटि हो जाना सभव है। कुशललाभ के काव्य म भी इनम से कई दोष हम दिखाई दे जाते हैं—यथा राजस्थानी से भाषाओ के शब्द प्रयोग से उत्प न छवकाल दोष (भी० ह० चौपई— दूहा स० 385), का य म क्लिष्टता के कारण अथ प्रतीति मे बाधक अपस दोष (मा० का० क० चौ० दू० 305) का य की पारम्परिक परिपाटी के विरुद्ध मनमान ढग के वणन स उत्प न नाळछेद दोष, द्विधात्मक अथ युक्त भ्रमोत्पादक शब्द योजना के कारण वहरो दोष, छ द के किसी प्रथम चरण के प्रथम और अतिम अक्षर के योग से अमगल सूचक शब्द निर्मित से उत्प न अमगल दोष, सवथा ग्राम्य या लौकिक श द प्रयोग से कविता म ग्राम्यत्व दोष और व्रीडा जुगुप्सा तथा अमगल भावो का आभास दन वाले अश्लीलत्व दोष की प्रतीति हम अवश्य कुशललाभ के का य मे दृष्टिगोचर होती है।

कथानक रूढ़ियाँ

कथानक रूढियो की सयोजना हर प्रकार के साहित्य मे उपलब्ध होती है, पर विशेष रूप से लोकोन्मुखी साहित्य मे। कुशललाभ भी लोक का कवि है अत यह स्वाभाविक है कि उसने अपने साहित्य मे खुलकर इनका प्रयोग किया है। कतिपय प्रसिद्ध रूढिया निम्न प्रकार हैं—

प्रेम परीक्षा, सदेश वहन, पहेलियो और गूढाथ पृच्छा का आयोजन, तिरस्कृत

प्रेमिका द्वारा लाछन, भविष्य-सूचक स्वप्न दर्शन, अप्सराओ, यक्ष यक्षियो या व्यन्तरियो से विवाह, पुनर्जन्म, देशनिकाला, भूतप्रेतो द्वारा सहायता, मृत प्राणियो को जीवनदान, योनि-परिवर्तन, दिव्य-जन्म, मन्त्रादि शक्तियो द्वारा चमत्कार प्रदर्शन, खेचरी विद्या की सिद्धि, शाप और वरदान रूप परिवर्तन, कर्म फल, पशुपक्षियो द्वारा सदेश प्रेषण, अभिमन्त्रित फल भक्षण से गर्भस्थिति, सौतिया डाह, वन म भटक जाना और सकटो से सामना, मन्त्र द्वारा स्थान परिवर्तन, अपहरण और प्रेम सघटन, निर्जन स्थान मे रूपसियो से भेंट, अदृष्ट होने की विद्या, दिव्य विद्याएँ, राक्षसो द्वारा विघ्न, अति मानवी शक्तियो का सहयोग, सर्पदश से मृत्यु, रूप-दर्शन और श्रवण द्वारा आसक्ति, मल्लयुद्ध, पुष्पवृष्टि, आकाशवाणी, शकुनो द्वारा भावी सकेत, दोहद कामना, जलक्रीडा मनोकामना पूर्ति हेतु गौरी पूजन, बीडा उठाना।

अलकार

कुशललाभ न स्वरचित 'पिंगल शिरोमणि' ग्रन्थ के अलकार प्रकाश म अर्थालकारो पर ही विशेष प्रकाश डाला है शब्दालकारो पर नहीं। पर इसके विपरीत उसने स्वरचित काव्य-ग्रन्थो म शब्दालकार और अर्थालकार दोनो का ही सहज रूप से प्रभूत प्रयोग किया है।

वयण सगाई अलकार राजस्थानी का एक मौलिक शब्दालकार है जो डिंगल के कवियो का अत्यन्त ही प्रिय अलकार रहा है। मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य मे कवियो ने इस अलकार का प्रयोग अनिवार्य मानकर बडी कठोरता के साथ किया है। यह अलकार एक प्रकार स अनुप्रास के अत्यन्त निकट का अलकार है, पर राजस्थानी काव्य मे इस निश्चित नियमों म आबद्ध कर एक स्वतन्त्र स्थान द दिया गया है। वयण सगाई से तात्पर्य है काव्य पदो, या ढालो के चरणो मे प्रथम शब्द के प्रथम अक्षर की अन्तिम शब्द के प्रथम अक्षर से, अतिम अक्षर से या चरण के मध्य के किसी शब्द मे आवृत्ति। इस प्रकार इसके आदि मेल (अधिक), मध्यमेल (सम) और अतमेल (न्यून) तीन प्रमुख भेद होते हैं। कुशललाभ ने अपनी ओर से 'वयण सगाई' जैसे शब्दालकार के लिए कोई विशेष प्रयास किया हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। फिर भी प्राय सभी काव्य ग्रन्थो म इसके थोडे-बहुत प्रयोग तो देखने को मिल ही जाते हैं।

अनुप्रासों मे भी छेक, वृत्ति, श्रुति, लाट, यमक के प्रयोग बहुतायत से मिल जायेंगे।

अर्थालकारो के प्रयोग मे वह शब्दालकारो की अपेक्षा बहुत आगे हैं। इसका कारण सदेश काव्य के मार्मिक दोहे ही हैं। कुशललाभ के साहित्य मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, तुल्य योगिता, तद्गुण, मीलित, विरोधाभास, असगति, काव्य

लिंग, अत्युक्ति, विषादन, अनुमान, सम्भावना, उदाहरण, स्मरण [illegible] योवित और अप्रस्तुत प्रशंसा आदि अलंकारों का प्रयोग मिलता है। उपमा और रूपक के प्रसंग तो प्रभूत संख्या में उपलब्ध हैं ही। उपमा के सादृश्यमूलक उपमा, वाचक धर्म लुप्तोपमा और पूर्णोपमा, रूपक में सांग, अभेद तथा निरंग भेद उपलब्ध है। अर्थालंकारों के कतिपय उदाहरण निम्नांकित हैं—

सादृश्यमूलक उपमा

हीयडा भीतरि पइसि करि, विरह लगाइ अगि।
प्रिउ पाणी विण ना बुझइ, बलइ सलगि सलगि ॥ 444

वाचक धर्म लुप्तोपमा

सुंदरि सहज गतइ सुकमाल मानसरोवर जेम मराल ॥
(भी० ह० चौ० 132)

चंदावदनी चंपक वर्णी, अहर अलत्ता रंग।
खंजर नयणी खीण कटि, चंदन परिमल अंग ॥
(ढो० मा० चौ० दूहा 26)

पूर्णोपमा

लघु केसरि जेहवी कडि लंक। (भी० ह० चौ० 133)

रूपक

जोबन हस्ती जउ गडिडउ तु अंकुस ले घरि आउ।

सांग रूपक

भव सागर समुद्र समान, राग द्वेष विने उधाण।
ममता तृष्णा जलपूर मिथ्यात मगर अतिकूर ॥ 12
मोजा ऊंचा अभिमान विषयादिक वायु समान।
संसार समुद्र मझारि, जीव भम्या अनंत वारि ॥ 13
(पू० वा० गी० छ० 12-13)

अभेद रूपक

अम्हे चंपा बिम तुट्टही, तुम्हे भमरा के भार।
(मा० मा० क० चौ० दू० 241)

निरग रूपक

सखी ए उगट माजणा, खिजमत करे अनन।
मारवणी मंदिर महले, कामणि मिलियो कत ॥
(ढो० मा० चौ० दू० 448)

उत्प्रेक्षा

चपक वयण सकोमल अगि, मस्तक वणी जाणि भुयग।
(मा० मा० क० चौ० 168)

जय सुपत्तरा करि कुमली, झीणी लाब प्रलब।
ढाला एहवी मारूर, जाणे कणयर कब ॥
(ढो० मा० चा० दू० 487)

परिणाम

इह तन जारू मसि करू, धआ जाइ सरग्गि।
जब प्री बादल होइ करि, वरसि बुझावइ अग्गि ॥
(मा० का० क० 353)

विनोक्ति

ए परमारथ प्रीछिज्यो, वाची प्रीतमलेख।
पाणी माहि पल्हाविज्यो, धरिज्यो प्रीति विशेष ॥
(मा० मा० क० 468)

विरोधाभास

सभार्यां सताप, वीसार्यां नवि वीसरइ।
नालज विष जे नाप, धरहरतु फीटइ नही ॥
(मा० का० क० 348)

स्वभावोक्ति

आखड़िया डबर हुई, नयण गमाया रोइ।
ते साजण परदेसडइ, रह्या विढाणा होइ ॥
(मा० का० क० 448)

कवि काव्य कौशल और अलकारा की छटा दिखाने मे कही नही उलझा है। परन्तु जो भी अलकार इन कथा काव्यो म आये हैं, वे सहज और स्वाभाविक रूप स रस के उपकारक बनकर आये हैं। इन कथाओ म परम्परागत उपमाओ मे भी

एक विशेपता दिखाई देती है, और वह है इन पर छाया हुआ राजस्थानी रग और रुचि। राजस्थान मे सौ दय के साथ शोभा सदा सयुक्त रही है। यह राज स्थानी सौ दय की अपनी मौलिक विशेपता है। नायिका के नाक की उपमा शुक नासिका से तो कई जगह दी गई है, पर कुशललाभ की नायिका कामकदला की नासिका की उपमा सवथा मौलिक है—

राक जिसी दीवानी सिखि। वाहि रतन जडित बहिरखो ॥

(मा० का० क० 13)

दीपक की लौ के समान नायिका की नासिका है। इसी प्रकार मारवणी के अलसाय ननो मे लाल डोरे हैं और वे कबूतर की आखो के समान भोली भी हैं—

मारू पारेवाह ज्यू अखी रत्ता मझ ॥ (ढो० मा० चौ० 459)

भाव पक्ष

कुशललाभ की काव्य कृतिया विषय के अनुसार आध्यात्मिक और प्रेमाख्यानक दो रूपो मे विभक्त की गयी हैं। प्रेमाख्यानक का य ग्र थो म कवि ने श्रृ गार रस का भरपूर आस्वादन कराया है। आध्यात्मिक रचनाओ म शा त रस की ही प्रधानता होती है कि तु इस विषय की कतिपय रचनाओ मे श्रृगार रस की अनुभूति भी स्पष्टत होती है। आध्यात्मिक वातावरण की पृष्ठभूमि मे उसका अवसान शा त रस मे हुआ है। मुख्य रूप से श्रृगार रस की ही अभिव्यक्ति इस साहित्य म देखने को मिलेगी।

कुशललाभ के साहित्य म श्रृगार के सयोग और वियोग दोनो ही पक्षो की अभिव्यक्ति मिली है। ढोला मारवणी चौपई तत्वसार रास स्थूलिभद्र छत्तीसी, भीमसन हसराज चौपई आदि रचनाओ म नायक नायिकाओ के विविध श्रृगार प्रसाधना से युक्त रूप वणन उपलब्ध हैं। कामकदला के नखसिख का वणन देखिए—

चपक वयण सकोमल अगि, मस्तकवेणि जाणि भुयग।
अधर रग परवाला वेलि, गयवर हस हरावई वेलि॥
नाक जिस्यो दीवा नी सिखा वाह रतन जडित बहिरखा।
मुख जाणे पूनिम नो चाद, अधर वचन अमतमय चद॥
पीन पयोधर कठिनोतग, लोचन जाणे त्रसू कुरग।
भाल तिलक सिर वेणी दड, भमह वक मनमथ कोदड॥

(मा० का० चौ० 188 191)

भीमसन हसराज चौपई' (चौपई 134) म मदन मजरी और स्थूलि भद्र छत्तीसी (छ० 13) म कोशा का नखसिख वणन भी इसी के अनुरूप किया गया है। नायक का रूप-वणन इतना सशक्त नहीं हो पाया है। मदन मजरी म रूप

सौन्दय का वणन देखिए—

> सुन्दरि सहज गवइ सुकमाल, मानसरोवर हंस मराल।
> लघु केसरि जेहवा कटिलंक, मलिन रहित मुख जाणि मयंक ॥ 132
> ओपइ कुंदण जिम तसु अंगु चपल तुरंगम चपल अति चंग।
> रंभागर्भ जिसी जुग जंघ, उदित बिल्व सम उरज उतंग ॥ 133
> अधर पक्व बिंबाफल अणुहारि कीर पूनलो चित्र आकार ॥ 134
> अबला तन छइ रूप अगम, कोमल वाणी अमृत सूम।
> जिन्जउ जउ थायउ संयोग, सफल जनम मुख-म भोग ॥ 135

कुशललाभ की प्रेमाख्यानक रचनाओं में नायक नायिकाओं की रत चेष्टाओं, रति केलियों, विहार, बौद्धिक मनोरंजनात्मक प्रहलिकाओं की संयोजना भी मिलती है। व संयोग सुख प्राप्त्यय मिलन हेतु अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करते दिखाई देते हैं। प्रेमाख्यानक काव्य माधवानल कामकंदला में नायक नायिका मिलन होते ही शृंगार सज्जाकर रति क्रीडा म प्रवत्त हो जाते हैं।

'भीमसेन हंसराज चौपई' में भी ऐसे वणन उपलब्ध हैं, पर संक्षेप म और संयत भाषा म वर्णित। 'माधवानल कामकंदला चौपई' में कवि ने रति केलि के उपरान्त मनोविनोद के लिए प्रहलिका पृच्छा का भी आयोजन कराया है।

कुशललाभ की रचनाओं म अवलोकन, मिलनोत्साह, आवेग और अश्रु जैसे अनुभाव तथा स्वप्न, अतृप्ति, लज्जा, जैसे संचारी भाव प्रदर्शक प्रसंग भी प्रस्तुत किये गये हैं।

संयोग पक्ष के चित्रण कामकंदला और माधव, मालवणी और ढोला, मारवणी और ढोला, मारवणी मालवाणी और ढोला, तजसार और उसकी आठों रानियों, मदन मंजरी और भीमसेन तथा रूपमती और राजहंस के संयोग म उपलब्ध हैं।

मालवणी के साथ अपने विवाह से अनभिज्ञ ढोला और मालवणी के मिलन म दोनों को अपार आनन्द की अनुभूति होती है, दानों म अपार प्रीति है, पर ढोला को मारवणी के साथ हुए परिणय की जानकारी मिलन पर वियोग की आशंका से ग्रसित प्रेमियों म शृंगारिक उन्मुक्तता का लोप सा हो जाता है। उनके संवादों में भी पहले की भांति संयोग की उन्मुक्त गहराई नहीं रह जाती।

ढोला के पूगल पहुंचने पर मारवणी को प्रियतम के आगत संयोग का सूचक स्वप्न दिखायी देता है और मारू म प्रिय मिलन की उत्कट अभिलाषा जाग उठती है—

> घर नोगुल दीवउ सजल, छाजइ पुणग न माइ।
> मारू सूती नींद भरि साल्ह जगाई आइ ॥ 484
> सारसि सद्दारह, भूपउ मास पनाखिया।
> अडियो अत्रारेह, जाणे ढोलउ आवियो ॥ 485

गुणहि गुणधि धार, जाण किर [illegible] जइया।
मूरी मानिम गनि जाने डोसो आविगो॥ 486

उसके स्वप्न को साकार करता पाता यथावस्था का गूढ़ दक्षिण नव पल्लव उठाता है। वह मूर्छित हो जाती है और उसका स्वप्न सच्चा हो उठता है। सखियों ने प्रात का चंदन से उबटन कर शृंगार किया और रात होने पर उस प्रिय के पास छोड़ कर चली गयीं। प्रथम मिलन में ही दोनों एक-दूसरे पर मुग्ध हो गए। मारवणी के हँसने पर उसकी दंत-पंक्ति से बिजली की चमक का भ्रम हो गया।

शील की शोभा म बधे सयोग चित्रण काव्य में स्वाभाविकता का सचार करते हैं। सयोग की स्थितियो के चित्रण म कवि ने प्रतीकात्मकता का सहारा लिया है।

मन मिलिया तन गहडिया, मनि मही मिलियाह।
सज्जन पाणी खीर जिम, धीरे धीर थयांह॥ 578
ढोला मारू एकठा, करे कुतूहल केलि।
जाणे चन्दा रूखड़े, चढ़ीत नागर बेलि॥ 580

कामकन्दला माधव सयोग के समय उपमानो के आश्रय से कदला के सौन्दय का वणन किया गया है। कन्दला और माधव की प्रेम चेष्टाओं म मानसिक और शारीरिक युद्ध का प्रगाढ़ रग है। तन मन दोनो तन्मय होकर उत्सव मनाते हैं।

माधव से मिलने पर कदला के निर्विकार मन म रति स्फुरण से जागृत भावों के प्रतिक्रिया स्वरूप होने वाली चेष्टाओ का वणन देखने योग्य है—

प्रेम प्रकासइ मोडइ अग, कराणा भजइ जाणि भुयग।
आलस अगि जमाइ करइ विरह विथा जल लोचन भरइ॥ 250
नयण बाण सा वेधइ बाल, धासइ कठि बाहि सुकुमाल।
करि सिउ खचइ कुसुमा माल प्रेम जागइ उर ततकाल॥ 251

वियोग शृगार

इसम पूव राग प्रवास विप्रलभ और करुण विप्रलभ की अवस्थाओ का चित्रण हुआ है। *ढोला मारवणी चौपई मे मारवणी के प्रेम, गुणकथन तथा स्वप्न दशन* म हसराज भीमसेन चौपई म योगी और शुक द्वारा भीमसेन के रूप गुण वणन मे और माधवानल कामकदला मे प्रत्यक्ष दशन के परिणाम स्वरूप उद्भूत पूव राग विप्रलभ की प्रतीति कराई गयी है। प्रवास विप्रलभ की अभिव्यजना माधवानल कामकदला चौपई म कामसेन द्वारा माधव के देश निष्कासन के समय, कामकदला की प्रवास विरहाभिव्यक्ति म तथा ढोला मारवणी चौपई मे ढोला के पूगल के लिए प्रस्थान की वेला म मालवणी के विलाप म हुई है। करुण विप्रलभ की

अनुभूति मदनमंजरी के देहावसान पर अगडदत्त के विलाप में, सर्पदंशन द्वारा मारवणी की मृत्यु पर ढोला के विलाप में, मदन मंजरी के गुम हो जाने पर भीमसेन के अग्नि प्रवेश के निश्चय में, तथा कामकंदला और माधव की प्रेम परीक्षा में हुई मृत्यु के उपरान्त व्याप्त वातावरण में स्पष्ट होती है। माधव के विरह में कामकंदला के हृदय में दावाग्नि सुलग रही है, पर धुआँ नहीं निकल पाता। उसकी स्थिति लता से टूटकर अलग हुए निरन्तर पीले पड़ते पत्तों के समान हो गयी है—

हियड़ा भीतर दव बलइ, धूओ प्रगट न होइ।
वेलि विछोह्या पानड़ा, दिन दिन पीला होइ ॥ 408

अनुभाव के चित्रण में श्रृंगार प्रसाधना का त्याग, भूमिपतन, अरुचि, अश्रुपात और स्तम्भन तथा संचारी भावों में विबोध, दैन्य, निर्वेद, त्राण, विषाद और स्मृति जन्य भावों को कवि ने कागज पर उतारा है। यथा—

तजइ तिलक काजल तंबोल, मक्षण न हावण खोल अमोल ॥ 361
छंडइ रंगित दक्षिणचीर, न करइ सोल सिंगार सरीर।
ऊभी थी धड़हड़ पड़ी, जाणें कसणी वढ ॥ 360
ढोला चाल्यो हू सखी बाज्या विरह नीसाण।
हाथें चूड़ी खीही पड़ी, ढीला थया संधान ॥ 429
बीछड़ता ही सज्जना, राता किया रतन्न।
चारी वे लिहु रातीया, आमू भति थन्न ॥ 435

कुशललाभ ने साहित्य दर्पणकार द्वारा उल्लिखित विरह की दश कामजन्य दशाओं में से प्राय 8 का वर्णन किया है। वे हैं—अभिलाषा, चिन्ता, गुणकथन, उद्वेग, स्मृति, जड़ता मूर्छा और प्रलाप।

इन कथाओं में श्रृंगार रस को प्रमुख रस के रूप में ग्रहण किया गया है, पर सहज रूप में उद्भूत रस की अवस्था के पारम्परिक रूप के दर्शन उसमें नहीं होते।

कवि की कृतियों में शान्त रस सहायक रस के रूप में उपलब्ध है। उनके काव्य जैन धर्म के सिद्धान्तों के प्रचार के हेतु लिखे गये हैं जिनका उद्देश्य राग द्वेषों से विमुख होकर वीतरागी पथ की ओर पाठक को बढ़ाना है। मोक्ष और अध्यात्म की भावना इनमें प्रमुख है। कवि ने अपने साहित्य को वीतरागियों की भक्ति का उपजीव्य बनाकर भी नवकार महिमा का बखान किया है। वह कभी भगवान जिनवर की प्राप्ति हेतु पात्रों को गुरु से दीक्षित कराता है कभी तीर्थ यात्रा कराता है, तथा कभी वैराग्य भाव ग्रहण कराता है। अन्य जैन कवियों की भाँति शान्त रस के माध्यम से श्रृंगार की अभिव्यक्ति करता है।

वीररस

गुजनसाभ के साहित्य में वीररस भी पर्याप्त है। गुजननाभ के नायिका का नायक के प्रेम में अधिक आकर्षक कराने की दृष्टि से अवसर पाकर नायक की तेजस्विता, शौर्य और नायिका की रक्षा की सामर्थ्य का उद्देश्य रखकर युद्ध करा दिया गया है। कवि ने नायक के शौर्य, आतंक, निर्भीकता, साहस और आत्म बलिदान के रूप में वीररस का चित्रण किया है। यह तेजसार रास में तेजसार के राक्षस के साथ युद्ध, पद्मावती के साथ युद्ध, सूरसेन के साथ युद्ध, विद्याधर के साथ युद्ध, तथा समरसार के साथ हुए युद्धों में वीररस स्पष्ट उपलब्ध है। मंत्र विद्या के बल पर हुए युद्धों में कुतूहल की सृष्टि तो होती है — पर वीर रस का परिपाक उसमें नहीं हो पाया है।

भीमसेन हंसराज चउपई में युद्ध विषयक अनेक प्रसंग आये हैं, जिनमें वीररस का आस्वाद मिलता है। यथा—

> तिहि ठामि सगर नरेन्द्र सनामध्य रात्रि तणइ समइ।
> चिहुं दिस दळ चतुरंग आव्या घयउ सार गमगमइ ॥ 197
>
> बहु कोलाहल घाडि मिलावहु पूर पयाला सेना बिढ़इ सहू
> सहू सेन झूझइ नर अमूझइ सबल दल भय सम्मली।
> तिणवार आप चढ़उ तुरंगम भीमसेन महाबली
> एकली रथि तिहा रही, रामा वीहती भुइ ऊतरी।
> आधार तरुमइ मध्य पइठी फौज बिहू दिसी परहरी ॥194
>
> एहवइ भीम नरेन्द्र मारथि भिडि परदल भजिया।
> निजसेन जीतो सगर नाठउ राय मन महि रंजिया ॥200

करुणरस

करुणरस का उदय पीणे सप के द्वारा मारू के श्वास को पी जाने से हुई मृत्यु के फलस्वरूप होता है। करुण रस की अभिव्यक्ति देखिए—

> मुख जोवइ दीवाधरी पाछउ करइ पलाह।
> मारू दीठी सास विण मोटी मेल्हइ धाह ॥572
> सोहउ सहू भेलाकिया, तिणवेला तिणवार।
> नरनारी सहु बिलबिलइ, हय हय सरजणहार ॥573
> वउलाओ प्रति ढोलउ कहइ ए दुख जीवे नइ कुण सहइ।
> एहुर वन्यउ जोडइ हाथि पइसिसि पावक मारु साथि ॥581

कामावती में माधव से बिछोह के समय कामकदला का विलाप माधव और कामकदला की मृत्यु पर विक्रमादित्य का पश्चात्ताप मारवणी की मृत्यु पर ढोला

की उक्तियाँ, मदन मजरी के सप दशन पर अगडदत्त का विलाप आदि प्रसगो मे करुण रस की व्याप्ति है। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

सप दश दीयइ खडहडी, अगडदत्त नइ धोळइ पडी।
कुमर करइ तब हाहाकार, हे ह दव हुयउ निरधार॥
—(अग० रा० चौ० 251 52)

जीमइ नहीं सरस आहार, जा न मिलइ माधव भरतार।
विधवा बसइ ते विरहणी, दुबल दह कीधी प्री घणी॥
—मा० का० क० चौ० 362

बीभत्स रस

बीभत्स रस का वणन भीमसेन हसराज चौपई म सिंह की गुहा मे विकीण अस्थि-पजरों म, तजसार रास चोपई, मे राक्षस के बीभत्स रूप और महामाई दुर्गा-सातसी म मांस भक्षण करत गद्धा, तथा खप्पर भरकर रक्तपान करती चौंसठ योगिनियो के प्रसगो मे प्रस्तुत किया गया है यथा—

तिहा अस्थि जीवा तणा मुरिय घणा मृत रूप।
मुह दीसइ बिभच्छ अति, विरूइ गधि विरूप॥
—(भी० ह० चौ० छ० 424)

कालवर्ण कूर विकराळ, मुखि मूकइ वैस्वानर झाळ।
पग प्रहार मुह धरहरइ, कोप चडयउ मुखि फलकल करइ॥
—(तेजसार रास चो० स० 28)

गिद्ध तणउ साथ गहगहियउ, लखण घन घणे मद्य लहीयउ॥
देव हूई तम दाणव टोली, हमची मचइ गहरीमा होली।
खाफर भडइ खेलइ खाली, रासइ रगत चउसठी टोली॥

रौद्र

ढोला मारवणी चौपई म मालवणी के प्रति साम द्वारा प्रदर्शित कोप मे, मारू से मिलन हेतु जाने की उतावली म, ढाला द्वारा ऊँट को पीटने और व्यदन अपशब्दो म तथा निरपराध ऊँट को दग्ध करवान पर मालवणी क प्रति मास के क्रोध म रौद्र रस अभिव्यक्त हुआ है। 'माधवानल काम कदला चउपई' मे क्रोधाभिभूत गोविन्द चन्द द्वारा माधव के देश निर्वासन, और माधव द्वारा राजा से प्राप्त द्रव्य नर्तकी को देकर उसक नत्य की प्रशसा करने पर क्रोधित राजा के स्वरूप मे भी यह रस झलकता है। "महामाई दुर्गा सातसी' मे महिषासुर मदन के लिए तत्पर दवी के स्वरूप में रौद्र के स्पष्ट दशन होते हैं। प्रसग प्रस्तुत है —

'कालिक दूह कहमह कीधा, रोहिर भक्षण जोगणी रीधा।
गहगडइ सिंघ, प्रखी ग्राह, अरिही देव अरि दलण आह॥

दातिया न्य गुण सयल हीय, भट भिढ भिडइ दाणवी भीय।
ऊससइ ग्रमद निरघाइ अपार, धड्हड्इ मूर धगधगइ धार॥
निहसिया निबड वाजा निषीठ, रिण माहि गर मापरइ रीठ॥
(म० टु० सा० 89 91)

भयानक

भयानक रस की निष्पत्ति 'जिनपालित जिनरक्षित रास' म सिहुणी क आक्रमण, 'तेजसार रास चोपई' म चतुदशी की अधेरी रात्रि म पद्मणी द्वारा विद्यार्थियो की बलि हेतु तैयारी म तेजसार द्वारा राक्षसों से मिलन म , उसके द्वारा दण्ड प्रहार से भूत प्रेता क सवनाश मे 'भीमसेन हसराज चोपई' म रात्रि मे दीपक के दिखाई देने तथा नागो से वेष्टित वृक्षो और भयग्रस्त रानी के कठावरोध म होती है। यथा -

सीहणि नीयरि ऊससइजी, करि जबकइ करवाल।
आवी पुहपा ऊररइजी, रूप कीयउ विकराल॥
मेइ बालइ बोहताजी, सामिणी अम्ह साधारि।
कयउ तुम्हारउ कीजसीजी, अम्ह जीवता उगारि॥
—(जिन-पा० जि० र० चौ० 24, 26)

वात्सल्य

प्रिय जन के प्रति रतिभाव ही वात्सल्य म परिगणित होता है। 'ढोला मारवणी चोपई' मे मारवणी के जन्मोत्सव पर व्यक्त आनन्द, पुत्र की कामना से नल की पुष्कर तीर्थ की यात्रा और पुत्र जन्म पर मनाये गये महोत्सव 'मा० का० क० चोपई' मे मकरन्दाम की अनायास पुत्र प्राप्ति के महोत्सव म इस रस का आस्वाद प्राप्त होता है। माधव के पुष्पावती नगरी म पुन प्रवेश की वेला म पुत्र द्वारा पिता के चरण स्पश और पुत्र को पहिचान कर गदगद् हुए पिता द्वारा पुत्र को आलिगनबद्ध करने मे, वात्सल्य की वास्तविक अनुभूति होती है। ऐसी ही अनुभूति व्यतरी क रूप मे अटवी म उतरी तेजसार की माता द्वारा वात्सल्य भाव से अभिभूत हो पुत्र को ली गई 'भामणा' म दिखाई देती है। प्रसग उद्धत है—

पुत्र उलख्यो प्रोहित जिसई हरखइ वूठा आयू तिसई।
आधा ले आलिगन दीयई, अति आणन्द घोऊइ लियइ॥
(मा० का० क० चौ० 644)

रे जाया नदन माहरा हू भामण लेऊ ताहरा।
आज गही मुझ उर तरु फल्यो, तू मुझ पुन घणे दिन मिल्यो॥
—(त० सा० रा० चोपई 293)

हास्य

हास्य रस का आनन्द ढोला मारू की संयोग वेला की वार्ता तथा मारवणी मालवणी-संवाद मे, 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' मे योगी के रूप मे, कोशा वेश्या की चित्रशाली मे आते स्थूलिभद्र को देखकर कोशा की सखियो द्वारा की गई व्यंग्यपूर्ण चुटकियो मे दिखाई देता है।

कवि ने इस प्रकार यथा प्रसंग विभिन्न रसो से युक्त वर्णना द्वारा काव्य को सुष्ठु बनाया है।

प्रकृति चित्रण

साहित्यकार को प्रेरणा देने वाली प्रकृति ही है। प्रकृति के साहचर्य से ही साहित्य 'सत्य शिव सुन्दर' का प्रतीक बनता है। कुशललाभ ने भी प्रकृति प्रदत्त प्रेरणा का लाभ लेते हुए अपने साहित्य मे उसका उपयोग किया है, पर यह मात्र वातावरण निर्माण की दृष्टि से ही किया गया है। अत चित्र विचित्र प्रकृति विषयक वर्णनो का उसमे सर्वथा अभाव है। उसने प्रकृति चित्रण का आश्रय आलंबन, उद्दीपन, दार्शनिक, तथा उपदेशात्मक और रहस्यात्मक पृष्ठभूमि के वातावरण निर्माण के लिये ग्रहण किया है।

'भीमसेन हंसराज चौपई' मे हमें प्राय प्रकृति के परिगणनात्मक रूप की छटा के ही दर्शन होते हैं। नन्दन वन के सौन्दर्य की श्रीवृद्धि कर रहे तरुराजि का परिगणनात्मक वर्णन प्रस्तुत है।—

सरस सदाफल नइ सहकार, अगर अशोक अरजुन अनार।
करणा केलि कपूर कदब, जातीफल जामुन ओ जब ॥ 24 ॥
पारजाति पदमाख पुनाग सूकडि सिमी सिव नइ साग ॥
रायण रोहिणी रोहीस, वेड मवेड वरुण नइ वस ॥ 25 ॥
श्रीफल सोपारी सु रसाल, तगर तिमर तिदुक नइ साल।
नीबू नियजा नइ नारिग पीपल पारस पीलु प्रियग ॥ 26 ॥

तेजसार रास और ढोला मारवणी चौपई मे भी ऐसे ही वर्णन अनेकश किये गये हैं।

प्रकृति के बिम्बात्मक रूप को काव्य मे उतारने का प्रयास कवि ने कतिपय स्थलो पर किया है—पर वह संश्लिष्ट और रूढ वर्णन ही है। कुशललाभ ने उससे हटकर कोई नयी दिशा इसमे दी हो ऐसा नही लगता। कुशललाभ ने अनेक प्रसगो के माध्यम से ऐसे चित्राकन करने चाहे हैं— पर सर्वाधिक मनोरम चित्र वह वर्षा ऋतु के वर्णन मे ही प्रस्तुत कर सके हैं। स्थूलिभद्र— छत्तीसी, तेजसार रास, पूज्य वाहण गीत आदि मे ऐसे चित्र देखने को मिल जायेंगे। तेजसार रास चौपई मे प्रयुक्त ऐसे एक स्थल का नमूना प्रस्तुत है—

[illegible]

ढोला मारवणी चौपई में विरह व्यथिता मारवणी को कुरजां का बोल मार की तरह लगता है या आग की भांति चिलकता है। 'माधवानल कामकन्दला चौपई' में माधव के वियोग में कामकन्दला बेल से विलग पत्तों के समान पीली पड़ रही है।

मारहुंमी सिउ माल्हिवा सज्जन संग सरीर। (ढो० मा० चौ० 246)

मूंगी मारवण मसरो, बहु मरिया मयंगेर।। (ढो० मा० चौ० 247)

रहस्यमय और दार्शनिक रूप में प्रकृति का वर्णन पुण्य साहस गीत में सूय गडांग सूत्र में वीररसायन के माध्यम से रहस्यमयी सत्ता के अस्तित्व का वर्णन करते हुए किया गया है। इसी भांति प्रकृति का आश्रय ग्रहण कर उसके माध्यम से मानव जीवन के लिए उपयोगी अनेक नैतिक उपदेश भी यत्र तत्र दिखाये गये हैं।

इसी प्रकार पृष्ठभूमि और वातावरण निर्माण या कथा में मोड़ देने की दृष्टि से प्रकृतिजन्य पदार्थों का यथा प्रसंग वर्णन किया गया है। हृदय के सूक्ष्म भावों को प्रकृति से प्रतीक ग्रहण करके भी प्रस्तुत किया जाता है। प्रकृति के ये अनेक पदार्थ उदात्त भावनाओं को प्रकट करने के कारण तथा आन्तरिक सादृश्य के कारण प्रतीक बन गये हैं।

6
समाज और सस्कृति

प्राचीन जन वाङमय म अत्यन्त सुव्यवस्थित और सुगठित सामाजिक व्यवस्था के दर्शन होते हैं। एक आदर्श लोकजीवन, रहन सहन, रीति रिवाज आदि का ज्ञान इन काव्यों म उपलब्ध कथोपकथन, व्यवहार एव वर्णित परिस्थितियो म घटना के माध्यम स स्पष्ट रूप स प्राप्त किया जा सकता है। कुशललाभ के साहित्य का प्रमुख आधार यह साहित्य ही रहा है। अत यह स्वाभाविक है कि उसके काव्यो म उपलब्ध सामाजिक व्यवस्था विषयक विवरण पारम्परिक या कल्पित हो। समकालीन परिस्थितियो से भी कवि या साहित्यकार अप्रभावित नही रह सकता, उसका भी उस पर प्रभाव पडेगा ही। कवि का ध्येय होना है—समकालीन समाज म व्याप्त अव्यवस्था को दूर कर पुरातन साहित्य या अपनी कल्पनाओं के माध्यम से एक स्वस्थ समाज का निर्माण। पर कुशललाभ अपने युग की सामाजिक व्यवस्था का सफल उदघाटक सिद्ध नही होता। जो भी सामाजिक, सांस्कृतिक चित्राकन उसके साहित्य म हुआ है वह प्राचीन और उसके समकालीन समाज की व्यवस्था के साथ उसके आदर्श की परिकल्पनाओ का मिश्रण ही कहा जा सकता है।

प्राचीन काल मे ही वर्ण-व्यवस्था म ब्राह्मणो का पद सर्वोच्च माना जाता था। कुशललाभ के साहित्य म इस परम्परा का निर्वाह किया गया है। ब्राह्मण की श्रेष्ठता और उसकी छलछद्म हीनता का इसमें चित्रण है। वह अपराधी होने पर भी अवध्य माना गया है। राज सभा इस बात का ध्यान रखती है कि राजा निरकुश होकर ब्राह्मण के प्रति स्मृति विरुद्ध कोई निर्णय न ले बैठे। (मा० का० चौ० 222)। ब्राह्मण की 'सीतल जात' (पवित्र वर्ण) कहकर ढोला मारवणी चौपई म ब्राह्मण से सदेश वाहक जैसा निम्न कोटि का काय नहीं कराया जाता। (ढो० मा० चौ० 273)। कही-कही साम्प्रदायिक मतभेद के कारण कुशललाभ ने ब्राह्मणो पर दोषारोपण भी किये हैं।

'तेजसार रास चोपई' मे इसी दुराग्रह के कारण प्रतिष्ठान-वासी ब्राह्मण सोमदत्त के पुत्र वल्लभाचाय को अत्यन्त मिथ्यावादी कहा है। (ते० सा० रा० 373) उस समय, पुष्टि माग प्रवतक वल्लभाचाय का प्रभाव धीरे धीरे राजस्थान के राज-परिवारो मे, विशेषत अपने को कृष्ण का वशज मानने वाले जैसलमेर

[illegible] रागिनियाँ। [illegible] कुशललाभ [illegible] चौपई [illegible] है। [illegible] मुद्रिका, [illegible], मंत्रवाद [illegible] और [illegible] प्रस्तुत किया गया है।

कुशललाभ [illegible] है। [illegible] ज्योतिष [illegible] आदि [illegible] ही प्रकट किया गया है।

[illegible] विभिन्न प्रकार के [illegible] के द्वारा समाज की [illegible] उनकी भूमिका [illegible] भी [illegible] किया गया है।

शूद्रों की [illegible] और [illegible] की सेवा शुश्रूषा [illegible] दिखाया गया है। [illegible] आदि जातियों, की [illegible] सम्बन्ध में [illegible] ओर संकेत तो किए गए हैं पर समाज में उनकी स्थिति या उनकी [illegible] सामाजिक व्यवस्था पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। इनसे जानकारी अवश्य मिलती है कि इनको [illegible] बदले इनको प्रमुख स्थान दिया जाता था।

समाज अनेक जातियों में विभाजित हो गया था। ये जातियाँ उनके कर्म के आधार पर ही बनीं और उसी के आधार पर इनके स्वतन्त्र संगठन स्थापित हो गए। जाति व्यवस्था के साथ सम्बद्ध पुरोहित, प्रजापत (कुम्हार), चारण, भाट, [illegible], ब्राह्मण, महात्मा, जोगी, रबारी, दमाम आदि का उल्लेख प्रमुख रूप से काव्यों में स्थान पर मिलता है। जातियों का उपजातियों में विभाजित हुआ भी हम देखते हैं। भीमसेन हंसराज चौपई में राजपूत जाति में उत्पन्न हुई ऐसी अनेक शाखाओं का उल्लेख किया गया है। माधवानल कामकंदला चौपई और ढोला मारवणी चौपई में भी इस प्रकार की जातियों का विशद वर्णन देखने को मिलता है।

कुशललाभ की रचनाओं में हमें आश्रम-व्यवस्था के संकेत भी मिलते हैं, लेकिन वे स्पष्ट नहीं हैं। गुरु के आश्रम में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्यार्थियों का विद्याध्ययन, युवावस्था में विवाह बंधन में बँध कर गृहस्थ धर्म का पालन, वृद्धावस्था में वैराग्य की भावनाओं के उदय और अपने उत्तराधिकारियों को घर बार या राज्य का भार सौंपकर संन्यास ग्रहण के प्रसंग प्राय हर कथा-काव्य में मिल जायेंगे। जैन धर्म की परम्परानुसार कुशललाभ ने भी अपने कथा नायकों का अन्त में किसी जैन यति से दीक्षित कराया है और अंतिम समय में शील, और सम्यक्त्व का पालन करते हुए केवली धर्म का आचरण करने वाला प्रदर्शित

किया है।

कुशललाभ के साहित्य में पारिवारिक व्यवस्था का भी अवलोकन किया जा सकता है। इनमें हम पितृ सत्तात्मक प्रणाली देखने को मिलती है। गृहस्वामी के पद पर हम परिवार के वयोवृद्ध व्यक्ति पिता को प्रतिष्ठित पाते हैं, जिसकी आज्ञा का पालन परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य है। पुत्र सदा माता-पिता के आज्ञा-पालक और उनकी सम्मति और सहमति से चलने वाले दिखाए गए हैं। इसी प्रकार पुत्र-वधुएँ भी सास ससुर की आज्ञा पालन करने वाली बताई गयी है। बड़ों की आज्ञा की अवहेलना करनेवालों को जीवन में भयंकर विपत्तियों का सामना करते दिखाया गया है। नवागत वधुएँ सास ससुर और ननदों के चरण स्पर्श करती हैं और आशीर्वाद के साथ उन्हें भेंटस्वरूप ग्राम, नगर, स्वर्णाभूषण और बहुमूल्य परिधान दिये जाते हैं।

मनुष्य के जीवन में पुत्र जन्म का बहुत महत्त्व माना गया है। पुत्र प्राप्ति के लिए मनुष्य देवी देवताओं की मनौतियाँ मनाते थे तीर्थ-यात्राएँ करते थे। 'ढोला मारवणी चौपई' में राजा नल पुष्कर के वराह देवता की मनौती मानता है और पुत्र पैदा होने पर दिये गये संकल्प के अनुसार वह पुष्कर तीर्थ की यात्रा भी करता है। 'तेजसार रास चौपई' में भी अवन्तीपुर का राजा पुत्र की प्राप्ति के लिए देवताओं को पूजता है। संतान न होने पर व्यक्ति अपनी प्रथम पत्नी की सहमति से या उसके बिना भी दूसरा विवाह करते थे। माधवानल चौपई में पुरोहित शंकरदास पुत्र पैदा न होने पर एक एक कर अनेक विवाह कर लेता है। पुत्रैषणा की पूर्ति किसी बालक को गोद लेकर भी कर ली जाती थी। यह आवश्यक नहीं था कि अपने गोत्रज या सपिण्ड को ही गोद लिया जाये। अपने भागिनेय को भी गोद लिया जा सकता था। तेजसार रास में अवन्तीपुर का राजा निराश होकर अपने भानजे समरसेन को गोद लेता है।

हिन्दू परिवारों में वैदिक मान्यतानुसार सोलह संस्कारों को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता रहा है। कालान्तर में धीरे धीरे इन संस्कारों की अनिवार्यता को समाज ने भुला दिया। फिर भी कतिपय संस्कार अवशिष्ट रह गये। कुशललाभ के साहित्य में हमें गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, नामकरण, विवाह और अन्त्येष्टि जैसे संस्कारों का चित्रण यत्र-तत्र मिल जाता है लेकिन इनसे सम्बन्धित विधि विधान की जानकारी इनमें नहीं मिलती। गर्भवती स्त्री के दोहद की पूर्ति पति के लिए एक अनिवार्य धर्म था। भीमसेन राजहंस चौपई में गर्भवती मदनमंजरी को लेकर दोहद पूर्ति के लिए राजा को वनखंड में गमन करते और अनेक कष्ट सहते प्रदर्शित किया है।

पुत्र जन्म पर आनन्दोल्लास सहित महोत्सव मनाने के वर्णन ढोला मारू चौपई, तेजसार रास चौपई, भीमसेन हंसराज चौपई आदि रचनाओं में प्राप्त होते

है। काव्य ग्रन्थो मे पुत्री के जन्म को भी उतना ही महत्त्व दिया गया है जितना पुत्र के जन्म को। मारवणी के जन्म पर भी माता पिता ने पुत्र जन्म के समान ही अत्यन्त हर्षोल्लास का अनुभव किया। नगर मे बधावे गाये गये। माधवानल कामकदला चौपई, ढोला मारवणी चौपई, और तजसार रास चौपई मे पुत्रो के नाम क्रमश माधव, साल्हकुमर, तेजसार, रखने के उल्लेख हैं। जन्म के उपरान्त पुत्रो की बाल्यावस्था मे ही मृत्यु हो जाने के भय से मृतवत्सा स्त्रियाँ अपने पुत्रो के विचित्र नाम भी रख दिया करती थी। काव्य मे साल्हकुमार का नाम ढोला रखने का यही कारण बताया गया है। इन सस्कारो की प्रक्रिया के विषय मे काव्य मौन है।

धमशास्त्रो मे और तदनुसार लोक मे भी विवाह सस्कार को अत्यधिक महत्व पूर्ण स्थान प्राप्त है। विवाह का मुख्य उद्देश्य सुयोग्य सतान को जन्म देकर पितृ ऋण से उऋण होने और सतति के सतत विस्तार से है। कुशललाभ ने भी विवाह का उद्देश्य धम, काम और मोक्ष की प्राप्ति माना है। माधवानल कामकदला चौपई मे सन्तानोत्पत्ति और भोग को विवाह का उद्देश्य बताते हुए इसे 'पुण्यफल' की सना दी गयी है।

धम शास्त्रो म आठ प्रकार के विवाह कहे गये हैं। कुशललाभ की रचनाओ मे प्रमुख रूप से प्राजापत्य गाधव और राक्षस विवाह के दशन होते हैं। वर-वधू के चयन मे माता पिता की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती थी। वे उनके गुणावगुणो को देखकर सम्बन्ध निश्चित करते थे। वर-वधू के चयन मे पुरोहित, नाई या किसी अन्य माध्यम का भी उपयोग किया जाता था। कन्या को अपना जीवन साथी चुनने का पूरा अधिकार था। उसकी इच्छा के विरुद्ध माता पिता द्वारा सम्बन्ध निश्चित कर दिये जाने पर वे आत्मघात तक के लिए सन्नद्ध हो जाती थी। माता पिता अपनी पुत्री की प्रसन्नता के लिए अपनी भूल के सुधार हतु सदा तत्पर रहते थे।

विवाह सामान्यत वयस्क होने पर युवावस्था मे होते थे, लेकिन समाज म बाल विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी। यह ढोला और मारवणी के विवाह से स्पष्ट है। राजा नल और दवडी भी अपने विवाह के समय वयस्क नहीं थे। यही स्थिति माधव की भी है, जिसका विवाह बारह वय की अल्पवय मे ही सम्पन्न हो गया था।

समाज मे स्वयवर प्रथा का भी प्रचलन रहा है, जिसम गुणावगुणो को देख कर राजकुमारियाँ अपन पति का चयन करती थी। 'भीमसेन हसराज चौपई' म रूपमजरी का राजहस के साथ विवाह, स्वयवर मे आमन्त्रित अनेक राजकुमारो की स्पर्द्धा में ही किया गया। स्वयवर म आये प्रत्येक राजा या राजकुमार के गुणो का बखान रूपमजरी की सखी उसके सामने करती है।

बहुपत्नी प्रथा समाज मे हय दृष्टि से नही देखी जाती थी। 'ढोला मारवणी चौपई' म उसके माता पिता ढोला का दूसरा विवाह मालवणी के साथ इसलिए कर देते हैं कि उसकी प्रथम ससुराल अत्यन्त दूर थी। माधव के पिता भी अपने पुत्र को दुखी देखकर उसका दूसरा विवाह कर देत हैं। 'भीमसेन हसराज चौपई' मे नि सतान रानी स्वय अपने पति को दूसरे विवाह के लिए प्रेरित करती है। तजसार आठ रानियो का स्वामी है। पुरोहित शकरदास पुत्र प्राप्ति के लिए एक-एक कर बत्तीस विवाह करता है। लेकिन वह निस्सतान हो रहा।

कुशललाभ के साहित्य मे नायक नायिकाओ के गुण सौन्दय की प्रशसा के श्रवण मात्र से विवाह के सकल्पयुक्त वणन भी उपलब्ध हैं। मदन मजरी इसी प्रकार भीमसेन के सौन्दय का वणन सुनकर उसके साथ ही विवाह करने का सकल्प लेती है।

अन्तर्जातीय विवाहो का काव्य मे प्रोत्साहन दिया गया है। तेजसार विजय श्री, एणामुखी आदि व्यतर और यक्ष कन्याओ का वरण करता है। अगडदत्त श्रेष्ठि कन्या मदनमजरी से विवाह करता है। माधव ब्राह्मण कुमार है—पर जातिपाति और समाज की मर्यादाओ को भग कर वेश्यापुत्री कामकदला के साथ परिणय सूत्र म बधता है।

वरयात्रा मे अनेक वादय य त्रो के वादन के साथ चतुरगिणी सेना, चारण, भाट, याचक आदि का वणन काव्य मे मिलता है।

प्राजापत्य विवाह सामान्यत ज्योतिषी से मुहूत पूछकर किए गए हैं। विवाह की वेदी पर आने से पूव कन्या द्वारा स्नान करके नूतन परिधान पहिनना आवश्यक माना गया है। विवाह के अवसर पर 'कारा चोर' पहनने का उल्लेख शिलारूप कदला के साथ माधव के विवाह म हुआ है। पुरोहित अग्नि की साक्षी मे वधू की हथेली म महदी रखकर वर की हथेली स हथलेवा जुडाता है। सस्कार के सम्प न हो जाने पर हथलेवा छुडाने हेतु परिवार के सदस्य एव उपस्थित सगे सबधी वस्त्राभूषण, हाथी, घोडे, दास दासी, धन सम्पत्ति और गाय तक भेंट मे दत हैं।

एसा प्रतीत होता है कि विवाह सस्कार के उपरान्त वर कुछ दिनो तक अपनी ससुराल म ही रहता था। उसके पश्चात् ही उसे विदाई दी जाती थी। कन्या की विदाई के समय उसके माता पिता कन्या को अपने पितृकुल और श्वसुरकुल की मर्यादा के अनुकूल आचरण करने तथा सास ससुर, दवरानी, जेठानी, ननद आदि को पूरा सम्मान देने की शिक्षा देते थे।

श्वसुरालय (ससुराल) मे प्रथमबार प्रवेश की वेला म वधू का गाजे बाजे से स्वागत किया जाता था। उसक आगमन पर बधावे (मगल गीत) गाय जात थे। बहू की मुह दिखाई के उत्सव मे भी सास ससुर और परिवार के बडे बूढे प्रभूत भेंट दिया करते थे। वर-वधू की प्रथम मिलन रात्रि को सुहागरात की सज्ञा दी गयी है।

वह भी एक उत्सव के रूप मे ही सम्पन्न की जाती थी।

नारी की सामाजिक स्थिति के दर्शन भी कवि के कथा काव्यो म अच्छी तरह हो जाते है। नारी पति पर अपना पूरा स्वत्व मानती थी। पति के जीवन मे किसी दूसरी नारी के दखल को वह सहन नही कर सकती थी। नारी के स्वकीय प्रेम की प्रगाढता के दर्शन हम मालवणी द्वारा ढोला को मारवणी के पास जाने मे खडी की गयी बाधाओ और कामकदला द्वारा माधव को पाने के लिए झेले गये कष्टो द्वारा होता है। तेजसार रास मे विजयश्री द्वारा अपने प्रिय की खोज मे दर-दर भटकने तथा मदनमजरी द्वारा अपनी इच्छा के विरुद्ध माता पिता द्वारा किए गये अन्य पुरुष के साथ विवाह के निर्णय की अवहेलना म भी उनके प्रगाढ प्रेम के दर्शन होते हैं।

पटरानी का पद सर्वोच्च माना जाता था। राज्य का उत्तराधिकारी भी पटरानी का पुत्र ही हो सकता था, इसीलिए राजकुमारियाँ विवाह से पूर्व स्वय को पटरानी के पद पर प्रतिष्ठित करने की शर्त लगाती थी।

शील और सतीत्व नारी के प्रमुख गुण माने जाते थे। इन्ही के कारण समाज म वे सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थी। कन्याओ को अपने पति के चयन की स्वतन्त्रता थी। माता पिता इस विषय मे पुत्री की इच्छा का पूरा सम्मान करते थे।

नारी म वात्सल्य भावना का आधिक्य होता था। उमा देवडी, और एणामुखी द्वारा व्यक्त अपनी पुत्रियो के सुखी जीवन की चिन्ता इसका प्रमाण है। कन्या के विवाह म इसी भावना स प्रेरित होकर दहेज म दास दासिया भी देने के प्रमाण प्रभूत मात्रा मे इन काव्यो म उपलब्ध है। उमा देवडी के विवाह मे दहेज मे दीप धारणी दासी दी गयी। मारवणी के विवाह मे पचास दासिया दहेज म प्राप्त हुई। नारी के रूप सौदर्य से आकर्षित पुरुष उनके अपहरण की चेष्टा भी करते थे। पति की मृत्यु पर स्त्रिया सती होती थी। पर यह अनिवार्य नियम नहीं था।

समाज म परदा प्रथा के प्रचलन के प्रमाण भी काव्यो मे उपलब्ध हैं। रानिया रनिवासो में रहती थी। अन्त पुर म अन्य पुरुष का प्रवेश वर्जित हुआ करता था। स्वच्छन्द विचरण मे विश्वास रखने वाली युवतियो के उदाहरण भी काव्यो म कम नही है।

वेश्या समाज का एक अनिवार्य अग थी। उनका पेशा नाच, गान और पुरुषो की काम वासना को तृप्ति करना था। लेकिन सतीत्व का पालन करने वाली वेश्याएँ भी समाज म थी। उन्हे अपने मार्ग पर चलने म अनेक कष्टो का सामना करना पडता था। अपनी प्रेम परीक्षा मे खरी उतरने पर त्याग और तपस्या का उन्हे फल मिलता था। राजा उनके प्रति न्याय करके वाछित व्यक्ति स उन्हे विवाह की अनुमति दे देता था। पुष्पावती नगरी का वर्णन करते हुए कुशललाभ ने रनिवास

मे सोलह सौ रानियो और नगर म छह सौ वेश्याओ की सख्या का उल्लेख किया है तो विक्रमादित्य जैसे धर्मात्मा राजा की राजधानी उज्जैन म भी उनकी सख्या 6000 बताई है। पुरुषो के चरित्र का पता लगाने के लिए भी राजा वेश्याओ का उपयोग करता था। विक्रमादित्य माधव के प्रेम की परीक्षा भोगविलासिनी नामक वेश्या के माध्यम से लेता है। अगडदत्त रास से भी वेश्याओ के अस्तित्व का पता चलता है।

राज दरबारो मे कलाकारो का वस्त्राभूषण और खाद्य पदार्थ देकर सम्मानित किया जाता था। इस आशय के उल्लेख ढोला मारवणी चौपई और तेजसार रास म मिलते हैं। राजा चारण, भाट, खवास आदि का भी पुरस्कृत कर उनका मान बढाता था। मारू के याचको (ढाढिया) को विदाई क समय दी गयी भेंट और उसी प्रकार राजा विक्रमादित्य द्वारा प्रेम की परीक्षा म उत्तीर्ण हुए माधव को ग्राम, नगर, भूमि, प्रासाद और अपार द्रव्य की भेंट इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है।

राज व्यवस्था म गौ, ब्राह्मण, स्त्री, बालक और तपस्वी साधु-सन्यासियो का वध सवथा निषिद्ध था। लोग पूवजन्म म विश्वास करते थे। कुशललाभ के प्राय सभी कथा-काव्यो म इसस सबधित प्रसग प्राप्त है। व्यक्तियो के जीवन म आये कष्टो का कारण पूव जन्म के कर्मों को ठहराया जाता था।

कुशललाभ के साहित्य म अग स्फुरण, स्वप्न मे वाछित वस्तु का दशन, छीक, पशु-पक्षियो का स्वर, उनके द्वारा माग विरोध या रास्ता काटना, स्थान विशेष मे उनके दशन के शुभाशुभ शकुन आदि का वणन भी यथाप्रसग किया गया है जो लोक विश्वास मे प्रचलित थ। तन्त्रमन्त्रादि पर भी लोगा को पूण आस्था थी। अभिमन्त्रित जल के पान या फल के भक्षण स मनोवाछित सन्तान की प्राप्ति मे भी लोगा का विश्वास था। मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, सैन्य स्तभन, रूप परिवतन और विष, चिकित्सा भी मन्त्र शक्ति के वश की बात मानी जाती थी। श्रेष्ठ वर की प्राप्ति के लिए कन्याएँ देवी की पूजा करके वरदान मांगती थी।

भूत, प्रेत, डाकिनी, शाकिनी, सिकोतरी, राक्षसी, यक्ष, यक्षी और व्यन्तरी जैसी अलौकिक शक्तियो के अस्तित्व म भी लोगा का विश्वास था। इनसे रक्षा के लिए तन्त्र मन्त्र का आश्रय लिया जाता था।

रूप परिवतन, अदृश्य होने या खेचरी जसी विद्याओ की प्राप्ति के अनेक उदाहरण कुशललाभ के काव्यो म उपलब्ध हैं।

ज्योतिष और भविष्यफल के पूव ज्ञान म तत्कालीन समाज के लोगो की आस्था थी। ज्योतिषियो का इसी कारण बहुत सम्मान था। आकाशवाणी द्वारा भी भविष्यवाणियाँ हो सकती हैं, ऐसा विश्वास व्याप्त था।

प्रायश्चित्त के रूप म आत्मघात और आत्मदाह जैसी घटनाएँ समाज म प्रचलित रही होगी। प्रेमी या प्रेमिका के देहावसान से दु खी होकर, मदलिप्त

प्रतिज्ञा की पूर्ति न होने पर, वांछित व्यक्ति को वर या वधू के रूप में प्राप्त न कर पाने पर, या प्रेमी से अल्पकालीन विछोह की स्थिति में भी लोग संतुलन खोकर आत्महत्या के लिए प्रेरित हो जाते थे।

साधु संतों के प्रति जनसाधारण में सम्मान की भावना थी। लोगों में विश्वास था कि साधु अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। कथाओं में प्रायः जैन मुनियों का उल्लेख हुआ है, जिनके आगमन पर नगर में घर घर मंगल गीत गाये जाते थे और स्त्री पुरुष सामूहिक रूप से प्रभु की वन्दना करने के लिए जाते थे। राजा स्वयं मुनियों के दर्शनार्थ उनके आश्रम पर जाया करते थे। साधु सत्यवक्ता, निष्कपट और निस्पृही होते थे। लोग उनसे पूर्वजन्म और भविष्य की बातें जानने को उत्सुक रहते थे।

राजा और राजकुमार या कथा के नायक इन मुनियों का उपदेश सुनकर वैराग्य धारण कर लेते थे और भावी जीवन को सत्कार्यों से सफल बना मोक्ष को प्राप्ति करते थे। अवधूतों के आगमन पर उन्हें आदर सहित आमंत्रित कर भोजन कराया जाता था। उनकी सेवा और रक्षा में वे सदा तत्पर रहते थे। आकाशचारी मुनियों का उल्लेख भी 'भीमसेन हंसराज चौपई' में आया है। गुरु के प्रति लोगों के हृदय में समादर की भावना रहती थी। नगर में आगमन पर राजा और राजकुमार उनकी वन्दना करने के लिए सामने जाते थे।

कुशललाभ के साहित्य में वर्णित समाज उच्च स्तरीय है। राजा के आवासों का उल्लेख यद्यपि बहुत ही कम हुआ है। पर जो वर्णन किया गया है, उससे राजाओं के विशाल राज प्रासादों में निवास की जानकारी मिलती है जिनमें भोग विलास की सभी सामग्री उपलब्ध होती थी। ढोला के महल को 'सात भूमि मन्दिर उत्तुंग' या सतमंजिला कहा है, जिसमें छोह पंक और कांच से शोभावृद्धि की गयी थी। गवाक्ष चन्दन के बनाये जाते थे, जिनमें रत्नों और मोतियों से जटित झूमके लगे रहते थे। स्वर्ण निर्मित सुन्दर आवासों का वर्णन भी मिलता है जिनमें चोआ, चन्दन, कपूर, केसर, धूप की सुगंधि व्याप्त रहती थी।

नगरों का विस्तार नौ या बारह योजन तक का कहा गया है। नगर, कूप, वापी, सरोवर, वन, गढ़, मंदिर आदि से युक्त होते थे। राज प्रासादों में पचवाद्य सदा बजते रहते थे। नगर में स्थित विस्तृत उपवनों में नायक नायिकाएँ विहार हेतु निकलते थे। प्रजा के हितार्थ राजा ऐसे सुन्दर वनों, उपवनों का निर्माण करते थे। पर्वोत्सवों पर राजा स्वयं अपने हाथी घोड़े सैन्य, अन्तःपुर तथा मित्र मण्डली और संगीत तथा नृत्य विशारदों सहित वनों में सरोवरों के समीप बने प्रासादों में निवास करते थे। घरों में आँगन रखे जाते थे। पशुओं के लिए अलग स्थान थे। मन्दिरों के निर्माण के उल्लेख भी मिलते हैं।

राजसी परिवारों में अन्त्येष्टि संस्कार के समय अगर और चन्दन का प्रयोग

किया जाता था।

जैन समाज अपनी अर्जित कमाई का अधिकाश भाग धार्मिक यात्राओ, सघा पर व्यय करता था। यह जन समाज का आवश्यक अग था। य लोग विविध प्रकार के पकवाना मे अधिक रुचि रखते थे। समाज म ताम्बूल सवन का प्रचलन था।

काव्य ग्रथो स स्त्री पुरुपा के वस्त्राभूपणो का भी पता चलता है। पुरुपो के वस्त्रो मे पगडी (कोटुली) का विशेप उल्लेख हुआ है। धोती, बागा, कम्बल, मोजडी का भी उल्लेख हुआ है। स्त्रियो के वस्त्रा म हीर चीर, सोवनपट घाघरा दिपणी चीर, अनुपम चीर, कचुकी, पटकूल, झूल और साडी के नाम मिलते हैं। पूरे परिधान के लिए 'वस' शब्द का प्रयोग हुआ है। कबल का प्रयाग मारवाड मे ओढने और पहनने दोना ही कामो के लिए होता रहा प्रतीत होता है। विवाह के अवसर पर कोरा चीर (बिना धुला वस्त्र) पहिनाया जाता था। ननदि या नत्य के समय रेशमी दुपट्टा पहिनती थी। विधवा स्त्रियो की वेशभूषा सधवाआ से भिन्न होती थी।

स्त्रियो के पोडश श्रृगारा मे उबटन, स्नान केश विन्यास, पान, अजन, अलक्तक, पुष्पहार, तिलक आभूपण, गध लेपन आदि का उल्लेख मिलता है। कुशललाभ के साहित्य की नारी रतन जडित बहिरखा, सीसफूल एकावल रखडी, चूडियाँ, मेखला, नवसरहार ककण, नेउर, करधनी सोहली, नकफूली कुडल मोती, पायल, झाँझर, आदि आभूपणो का प्रयोग करती हैं। राजा लोग भी आभूपणो का प्रयोग करते थे। ईडर के आभूपण और दक्षिण के चीर लोकप्रिय थे।

स्त्रियाँ केसर और चदन का, कुसुम तथा कपूर का शरीर पर लेप करती थी। आखो म अजन और काजल और हथेलियो के सौदय वद्धन के लिए आरक्त रग का उपयोग होता था। अधर ताबूल से रँगे जाते थे। शरीर पर सुगधित चपा आदि के तैल का मदन तथा भोजन के उपरान्त गध द्रव्य कल, मगमद, चोवा चदन के उपयोग का उल्लेख हुआ है। ललाट पर तिलक लगाया जाता था।

भोज्य पदार्थों मे भुरट और बाजरी के उपयोग का उल्लेख ढोला मारवणी री चौपई' म हुआ है। भुरट अकाल की अवस्था म ही खाया जाता था। सामत वग सुरा का प्रभूत प्रयोग करता था। सुरापान के लिए 'छाक' शब्द प्रचलित था।

मनोविनोद के साधना म आखेट, जलक्रीडा, नृत्य, सगीत विद्या विलास (प्रहेलिका आदि), नाटक आदि प्रमुख थे। वीणा वादन, चचरी नत्य, प्रहेलिका, गाहा, गूढा, गीत, कथा वार्ता का भी उल्लेख हुआ है। देशाटन को भी मनोविनोद के साधनो मे परिगणित किया गया है।

समाज उत्सव प्रिय था। सन्तानोत्पत्ति के अवसर पर बड़े उत्सवों का आयोजन किया जाता था। विवाह और धार्मिक उत्सव भी बड़े धूम धाम से सम्पन्न किये जाते थे। होली, श्रावणी तीज, दशहरा आदि पर्वों का उल्लेख ढोला मारवणी चौपई में हुआ है। श्रावणी तीज और होली के वासन्तिक पर्व पर काव्यों में नायिकाओं को अपने नायक की प्रतीक्षा करते दिखाया गया है। वासन्तिक पर्व के अवसर पर प्रियतम के दूर रहने पर नायिका द्वारा होली की झाळ में कूद मरने तक की स्थिति भी प्रदर्शित की गयी है।

कुशललाभ के साहित्य में तत्कालीन राजविलास और जैन समाज की सम्पन्नता के भी दर्शन सम्यक् रूप से होते हैं। वहाँ एक ओर अकूत अन्न धन से खेलनेवाला समाज है तो दूसरी ओर उनसे दान, भेंट उपहार आदि की कामना करने वाला समाज भी। सम्पन्न व्यक्ति याचकों को मुक्तहस्त दान देता है। कला-कौशल पर मुग्ध कामसेन माधव को अटूट धन सम्पत्ति से सम्मानित करता है। सोमशाह जैसा सेठ विशाल धार्मिक संघ का आयोजन करता है। पुष्पावती, कामावती उज्जैनी, कान्तिनगरी वाराणसी जैसे विशाल नगर देश की समृद्धि की सूचना देते हैं।

वैश्य वर्ग व्यापार से अपार धन अर्जित करता है। घोड़े, ऊँट रत्नाभूषण, वस्त्रादिक के व्यापार हेतु वे देशाटन करते दिखाये गये हैं। श्रेष्ठि-कुमारों को अनेक संकटों का सामना करते हुए धन कमाने हेतु समुद्र पार की विदेश यात्रा करते भी दिखाया गया है। तेजसार रास में चौरासी प्रकार के बाजारों (चौहट्टों) का उल्लेख हुआ है। मुलतानी घोड़ों तथा बड़ी थूही के कच्छी ऊँटों की अधिक माग थी, ऐसा ज्ञात होता है।

अकाल पड़ने पर राजा लोग एक दूसरे की सहायता करते थे। ऐसी स्थिति में प्रजा सहित वे राज छोड़कर निकल जाते थे।

समाज में राजा का सर्वोच्च स्थान होता था। वह प्राय निरंकुश होता था। किसी व्यक्ति द्वारा राज्य के अहित को देखते हुए उसे राज्य से बहिष्कृत कर देना एक सामान्य सी बात थी। राजा अपने राज्य के किसी भाग को राजकुमारियों के दहेज में भी दे सकता था। राजा अपने स्वार्थ के लिए अपने सम्बन्धियों की हत्या भी करवा देता था। राजा के सम्मुख अपना दुख-दर्द सुनाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र था—और उसके कष्ट को समझना राजा का कर्तव्य था। राजसभा में भी लोग अपनी समस्याएँ रखते थे। अपराधियों को समुचित दण्ड दिया जाता था। राजा अपने राज्य में प्रजा के कष्ट निवारणार्थ हर सम्भव प्रयत्न करता था।

चोर डाकुओं का पता लगाने विपक्ष की सूचना प्राप्त करने या अन्य किसी जानकारी के लिए गुप्तचरों की व्यवस्था थी। इस कार्य के लिए चोर, जुआरी,

वेश्या, खवास, मित्र या किसी विश्वसनीय व्यक्ति का सहयोग भी लिया जाता था। भोग विलासिनी वेश्या आगिया वेताल, कवडिया जुआरी, खवास आदि के उल्लेख इन काव्यो मे गुप्तचरो के रूप मे आते हैं।

राजा अपने प्रधानो पर पूर्ण विश्वास रखते थे। राज्य की सभी समस्याओ के निराकरणार्थ उनकी सम्मति ली जाती थी। उनकी सम्मति पर राजा युवराज तक को गृह त्याग के लिए बाध्य कर देते थे।

कुशललाभ के काव्य ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि राजाओ के पास विशाल सेनाएँ होती थी जिनमे हाथी, घोडे, रथ और पैदल सैनिक होते थे। सेनाओ के प्रत्यक्ष संघर्ष की अपेक्षा कूटनीतिक युद्ध का सभवत अधिक महत्त्व माना जाता था। सेना राज्य की सुरक्षा के लिए होती थी। सेना का स्थान नगर के पास रहता था। युद्ध के निवारण के लिए राजा दण्डस्वरूप विरोधी को ग्रामादि देने को भी तत्पर रहते थे।

व्यर्थ का खून खराबा उन्हे पसद नही था लेकिन कभी कभी छोटी छोटी बातो के लिए भी युद्ध छिड जाते थे। युद्ध के प्रमुख कारण कोई सुन्दरी, राज्य विस्तार की इच्छा या प्रतिशोध की भावना हुआ करती थी। राजकुमारियो को युद्ध लडकर प्राप्त करने पर राज प्राप्ति की भविष्यवाणियाँ भी ज्योतिषी करते थे। युद्ध मे तलवार और भाले ही प्रमुख शस्त्र थे। राजा वदियो का दमन कर प्रजा मे अमन चैन बनाये रखता था।

राज परिवार मे पुरोहित को अत्यधिक सम्मान प्राप्त था। वह राजा तथा अन्त पुर के धार्मिक कृत्यो को सम्पन्न करता था। यदाकदा पुरोहित भी अकूत ऐश्वर्य के स्वामी भी होते थे। माधव ऐसे ही पुरोहित का पालित पुत्र था।

चारण भाट राजा की प्रशस्ति (विरुदावली) का गान करते थे। युद्ध के समय उन्हे शौर्य प्रदर्शन हेतु उत्साहित करना उनका प्रमुख काम था। भाट राजाओ को विवाह योग्य सुन्दर कन्याओ की जानकारी भी देते थे। अपने स्वामी की स्वार्थ-पूर्ति मे भी वे साधक बन जाते थे। ढाढियों को सदेश प्रेषण हेतु 'ढोला मारवणी चौपई' मे उपयुक्त पात्र समझा गया है।

राजद्वार पर नियुक्त प्रतिहारी या द्वारपाल राज परिवार और राज्यकोष की रक्षा करते थे। स्त्रियाँ भी द्वाररक्षक के रूप मे नियुक्त की जाती थीं। उनके हाथ मे उत्कृष्ट कोटि के लोहे से बनी तलवार कक्लोह रहती थी।

प्रजा का हाल जानने के लिए राजा स्वय वेश परिवर्तित कर नगर भ्रमण करता था। इस काम मे वह अपने अन्तरग मित्रो का सहयोग भी लेता था। राजा की निस्सतान मृत्यु हो जाने पर गर्भवती रानी से उत्पन्न पुत्र राज्य का अधिकारी बनता था—अन्यथा भानजे को सिंहासन पर बैठाया जाता था।

शिक्षा

इस काल म शिक्षा गुरुकुल मे दी जाती थी। गुरु के आश्रम मे कई विद्यार्थी एक साथ शिक्षा ग्रहण करते थे। वे गुरु के लिए जगल से लकडी, घास आदि भी इकट्ठा करके लाने का काम करते थे। बदले म उन्ह शिक्षा और अन्न मिलता था। तत्कालीन समाज म कन्या को भी समुचित शिक्षा दी जाती थी। राजपुत्रो की शिक्षा का प्रबन्ध प्राय उनके राज प्रासादो म ही किया जाता था। स्त्रियो को ललित कलाओ की शिक्षा दी जाती थी। वे नत्य, सगीत, काव्यादि कला म निपुण हुआ करती थी। नायिकाओ को कला की शिक्षा देकर चौसठ कलाओ मे निष्णात बनाया जाता था। सगीत और नाटक का अभ्यास बाल्यावस्था मे ही प्रारभ कर दिया जाता था। यहाँ विद्याएँ 14, लक्षण 32 और कलाएँ 72 मानी गयी थी। राजकुमारो की शिक्षा के लिए जन साधु नियुक्त किये जाते थे। उच्च शिक्षा के लिए राजा सामन्त, आदि अपनी सन्तान को दूरस्थ देशो म भी भेजा करते थे। *बनारस, चपापुर आदि शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे।*

वास्तु कला उन्नत अवस्था म थी। व्यतरियाँ गढ सरोवर, मदिर, कूप, वापी, घन दहरा चौरासी चोहट्टा आदि स युक्त नगरो का निर्माण करने मे दक्ष कही गयी हैं।

कुशललाभ रचित कथा साहित्य म हमे जैन धम का विस्तत वणन मिलता है। जैन साधु सुन्दर शिक्षा प्रद कथाओ का प्रणयन कर उनके माध्यम से जैन धम की शिक्षाओ का प्रसार करते थे।

इन का य ग्रथो मे हम कवि के भौगोलिक, वानस्पतिक और प्राणी जगत सम्ब धी ज्ञान की भी जानकारी मिलती है। इन कतियो मे यत्र तत्र गगा, क्षिप्रा आबू, मोवनगिरि, शत्रुजय गिरि, सिद्धाचल, पुण्डरगिर, वैताढय पवत पुष्कर मानसरोवर, ललित सरोवर, सुद्ध सागर, पश्चिमवन, दक्षिणवन, वनखण्ड, नदन वन नव द्रोण नामक कूप आदि का उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार आम्र, कदली, कनर चपा वट, जाल आक चन्दन, केर, खाखरा, शिरीष, खजूर, लवग, तिल, सेवार, *नागरवेल, गुणवेल, कटाला,* फोग आदि वक्ष, पादप, लता बेलियो के नाम मिलते हैं। *प्राणियो* मे मोर क्रौच पपीहा, सारस चकोर चकोरी, हस कोयल तोता, खजन आदि पक्षियो तथा मछली, मढक पीवणा साँप, भ्रमर, टिड्डी, बरी, आदि कीट पतगा और सरीसृपो के नाम भी मिलते हैं।

प्रमुख रचनाओ से उद्धरण

माधवानल काम कदला चौपई

सोलह श्रृंगार वर्णन

कामकदला नाटक करइ माधव मनि अपछर सभरइ।
आप पासि बइसारिउ भूपि, निरखइ कामकदला रूपि ॥ 193 ॥
चपक वण सकोमल अग, मस्तकवेणी जाणि भुयग।
अधर रग परवाली वेलि, मयवर हस हरावइ गलि ॥ 194 ॥
नाक जिसी दीवा नी सिखा, वाहि रतन जडित बहिरखा।
सीसफूल सोवन राखडी, कचनमयि घडि रतने जडी ॥ 195 ॥
गलि एकाउलि नवसर हार, ककण नेउर रूणझुणकार।
मुख जाणी पूनिम नू चद, अधर वचन, अमृतमय बिंद ॥ 196 ॥
पीन पयोधर कठिन उतग, लोचन जाणि त्रस्त कुरग।
भालि तिलक सिरि वेणी दड, भमह वक मनमथ कादड ॥ 197 ॥
कोमल सरल तरल अगुली, दत जिस्या दाडिमनी कुली।
खलकइ चूडी सोवन तणी, क्षुद्रघटिका सोहामणी ॥ 198 ॥
केसरिसिंह जिस्यु कटि लक, रतन जडित कटि मेखल वक।
जघ जुयल करि कदली थभ, अभिनव रूपिइ रमणी रभ ॥ 199 ॥
क्षागइ चदन केसर खोलि, अधर दसण रगित तबोळ।
अजन सिउ अजित आखडी, जाणि विकच कमल पाखडी ॥ 200 ॥
सज्या तिणि ईं सोलह सिणगार, नाटिक अवसरि हरख अपार।
तउ निरखइ माधव वलि वली लागउ प्रेम विरह व्याकुली ॥ 201 ॥

ढोला मारवणी चौपई

सकल सुरासुर सामिनी, सुणि माता सरसत्ति।
विनय करीनइ वीनवु, मुझ दिउ अविरल मत्ति ॥ 1 ॥
जोता नवरस एणि युगि, सविहु धुरि सिणगार।
रागइ सुरनर रजीयइ, अबला तसु आधार ॥ 2 ॥
वचन विलास विनोद रस, हाव भाव रूति हास।
प्रेम प्रीति सभोग रस, ए सिणगार अवास ॥ 3 ॥
गाहा गूढा गीत गुण, कवित कथा कल्लोल।
चतुर तणा चित रजवण, कहइ कवि कल्लोल ॥ 4 ॥

गाहा

मणहर नवरस मझे, सुदरि नारीण सरस सम्बन्धा।
निरुवम कवियं ति निबद्धा, सुण तु सयणा जणा सुगुणा ॥ 5 ॥
नलवर नयर नरिंदो, नलराय सुउ सल्लकुमर वरो।
पिंगल राय सु धूया, वनिता मारवणि वणविसु ॥ 6 ॥

कवित्त

पाणी पथउ पवग खग्ग खगउ खुरसाणी ॥
विमानगरो वस्त्र एक विण सुर सिरखाणी ॥
पट्टकूल पट्टणी, दस भोगी घर दक्षण।
कुंजर मदली खडि विप्र तिरहूती विचक्षण ॥
तिम चन्द्र वदन चपक वरण, दत झबकइ दामिनी।
सारगनयण ससार इणि, मणहर मारू कामिनी ॥ 7।
मुरधर देस मझारि, सयल धण धन्न समिद्धउ।
नामइ पूगल नयर, पुहवि सगलइ परसिद्धउ ॥
राज करइ रमिराह प्रगट पिंगल पृथवीपति।
प्रतपइ जसु परताप दाँन जलन्धर जिमि दीपति ॥
देवडी नामि उमा धरणि, मारुवणी तसु धू कुमरि।
चउसठि कला सुदरि चतुर, कथा तास कहिसु सुपरि ॥ 8 ॥

चोपई

पुगल नयरी मुरधर देस, निरुपम पिंगल राम नरेस।
मारवाड नव कोटी धणी, उत्तर सिंध भूम तसु तणी ॥ 13 ॥
उणी नगर लोक सुखी वसे, वाव जल चिहु दिसि दिस।
आठ सहस हेवर तसु मिले, पच सहस पायक दळ भिले ॥ 14 ॥
वरस बार म बैठो राज, अरि भाजे सभली आवाज।
त्रिण वरस माहे निज प्राण, सिंध साधि मनावी आण ॥ 15 ॥
पनर बरस पाठवियो राजान, रूपवत गति राय समान।
पाळें राज सुखे आफणी, भूपत चढयो आहेडइ भणी ॥ 16 ॥

चोपई

पाणि ग्रहण तणो परिमाण, माडयो बेहु सुपति मडाण।
मोहोछव तोरण मगल च्यार, श्रीघ वधावा तणी अति वार ॥ 183 ॥
सुभवेला सुभ दिन सुभ घडी नेवडो लगन तणो नेवडो।
घड री माडी मगल च्यार, जान मानवी मिल्या अपार ॥ 184 ॥

माय ताय बिहु वधि फाटि, परणाव्या पुहवर तीरथ वाठि।
धवल मगल गीत धुनि निआ, साल्हकुअर मारू परणिआ ॥ 185 ॥
अरथ गरथ खरचिया अपार, बालक अछे बेहेइ कुमार।
थाम नाम सुविसतर लिये, आया गया सहु यो सवे ॥ 186 ॥
इणी प्रस्तावे साल्ह कुमार, मालवणी सू प्रीत अपार।
दोइ, पुहर ऊनाला तण, पोढयो मंदिर आपणे ॥ 260 ॥
सेजे मालवणी सघान, विम प्रीत ई सू ए वात।
तिसइ माता चपावती, अलगा थी दीठी आवती ॥ 261 ॥
ते दखी लाजिओ कुमार कपट निद्रा करी तिवार।
माता आवी ऊभी रही, जाणू सुत पोढयो सही ॥ 262 ॥
वहु किन्ह सासू एक वार, आरीसो माग्यो अपार।
दता वहु लगाई वार, आण्यो मन माह अहकार ॥ 263 ॥
सासू वहु प्रत ऊचरे वाई बडाई इतरी करे।
जो मारवणी अलगी रही, तो तू करे बडाई सही ॥ 264 ॥

स्थूलि भद्र छत्तीसी

सारद सरद चन्द्र करि निमल,
(ताके) चरण कमल चितलाय कहू।
सुणत सतोष हुव श्रवणा कू,
नागर चतुर सुनउ चित चाय कहू ॥
कुशललाभ वुल्लति आनन्द भरि,
सुगुरू पासादि परम सुख पाय कहू।
करिहू थूलभद्र छत्तीसी,
अति सुन्दर पद बन्ध बनाय कहू ॥ 1 ॥

छन्द रोमकी

मजन अजन कीना, सुधि सब तन भीना,
भ्रमर सारभ लीना, सोहइ सिर रखरी।
कुडल कपोल घोल, वदन तबोल रोल,
कुच झकझोर पीर, सारइ तन्वी सखरी ॥
कोमल कणयरि कब, अधर विद्रुम बिंब,
पुहप वेणी प्रलब, जइसी चित्र पुतरी ॥
कुशल सुमति जागइ, कोस्या रिखिराय आगइ,
दूर ही थी पाइ लागइ, मानु सरग थी ऊतरी ॥

आवतइ पावस कालि, रह्यो कोस्या चित्रमालि,
आहार जीमइ रसालि जाण्यो जो पूगो मदन।
तरुणी पेषता तन, काम मद मोह्यो मन,
प्रेम तनु ज्यो लावइ घन अहमो सामलइ वयन।
गयोजी नेपाल देस, सहतो दुख क्लेस,
मिल्यो जी दाता नरेस, दीन्हो कांमल रतन।
आणी सोई गिया दीन, पूछतो सरीर भीन,
कहउ रिषी कहु कीन, अहसो राखिह तन॥ 35॥

थभण पार्श्वनाथ स्तवन

त्रोटक

प्रभु प्रणमू रे पास जिणेसर थमणो।
गुण गाइवा रे मुझ मन उलमइ घणो॥
ग्यानी विण र एहनी आन्नि न को लहू।
तो ही पिण रे गीतारथ गुरु इम कहे॥ 1॥
इम कहे शास्त्र तणे प्रमाणे राम दशरथ नदनो।
वधवा पाजे सीत काजे, समुद्र तट एकणि कनो।
तिहा रह्या बाधव राम लक्ष्मण साथ सेना अति घणी।
प्रासाद एक उत्तम तोरण थापना जिनवर तणी॥ 2॥
तिहा मूरति रे मूल गम्भीर पास नी।
मन वछित रे आशा पूरे आस नी।
ते राजा र दिन प्रति पूजा साचवे।
कर जोडी रे बे बधव इम वीनवे॥ 3॥
वीनवे सामी तुम प्रसादे जलधिजल थभे किमे।
तो पाज बाधू लक साधू इम कहि प्रभ पाय नम।
बहु पूज करता ध्यान धरता सात मास थया जिसे।
नव दिवस अधिका थया ऊपरि जलधिजल थभ्यो तिसै॥ 4॥
ए अतिशय रे अचिरज पेखी प्रभु तणो।
तिण कारण रे नाम दियो तसु थभणो॥
जल ऊपर रे पाज करी पाथर तणो।
गढ लका रे साधेवा सीता भणी॥ 5॥
गढ लक साधी सीत आणी तेण वनि आव्या वली।
दिन आठ, अठाई महोच्छव किया मन पूगी रली॥

त राम राजा शुद्ध श्रावक विनीता नगरी बसैं।
बीसमा जिणवर तणै वारे इम कहि गुरु उपदिसैं ॥ 8 ॥

कलश

इम स्तव्यो थभण पास सामी नयर श्री खभाइत।
जिम सुगुरु सुमुख सुणीय वाणी शास्त्र आगम सम्मते ॥
ए आदि मूरति सकल सूरति सेवता सुख पाव ए।
भल भाव आणी लाभ जाणी कुशललाभ पयप ए ॥ 38 ॥

भीमसेन राजहस चौपई

(बाग तडाग वणन)

सरस भूमि सुभ दिन सुभवार, वाडी माडी अति विस्तार।
वा'या विविध अपूरब व्रिप्य लघु तरु घणा लता ना लव्य ॥ 21 ॥
देस विदेस पठाव्या दूत, पत्र लेइ परदेस पहूत।
भूपति मोटा मोटा भणी, अधिका प्रीति लिखिया पणी ॥ 22 ॥
सुदर सरस वक्ष जे सार, पहुचाडे या इहा अपार।
इणि परि तरुवर आव्या घणा, सोहइ ते वन सोहामणा ॥ 23 ॥
सरस सदाफल नइ सहकार, अगर असाक अरजन अनार।
करणी केलि कपूर कदब, जातीफल जामू जलजब ॥ 24 ॥
पारजाति पदमण पुन्नाग, सुरहि सिमी सिव नइ साग।
राइण रोहीडा रोहीस, वेड सवेड वरुण नइ वास ॥ 25 ॥
श्रीफल सोपारी सुरसाल, तगर तिमर तिदुक नइ ताल।
नीम्बू निमजा नइ नारिग, पीपल पारस पील प्रियग ॥ 26 ॥
खयर खलहला खीप खजूर बकुल बिदाम बीजना पूर।
मडप दाख तणा माहत, अवर वक्ष नी जाति अनत ॥ 27 ॥
नागवेलि नइ नील निकुज, परि परि पसर पुहप ना पुज।
रूडा घणा सकल सहि रूख भाजइ जिण आहारइ भूख ॥ 28 ॥
दहु दिसि भीति पोळि चिहु दिसइ, वनमालिक तिहा वासा वसइ।
विचि विचि वन माही अरहट बहइ, सीचइ तरुवर पाणी लहइ ॥ 29 ॥
थोडे वरसे थिर जल सग, अनुक्रमि तरुवर थया उतग।
विचइ सरोवर एक विशाल, घटित पालि सोहइ घडनाल ॥ 30 ॥
निमल सीतल सुरभित नीर, तरवर थया सबल तसु तीर।
चक्रवाक सारस चिहु दिसइ, विविध विहगम वासो वसइ ॥ 31 ॥

नमो वडवडी वात जे जगि विख्याता, नमो ते सहू ताहरा रूप माता।
नमो ॥ किंकरी चित्त तुझनी अराधै, नमो सगति तु तेहना काज साधै ॥ 46 ॥
नमो सत्य तू जाणि जे तुज्झ सेवी, नमो दोहिली वार तू सार देवी।
नमो रिद्धि वृद्धि जे चरण राता, नमो आनदकारी आदि माता ॥ 47 ॥

कलस

इन्द्रादिक सुर असुर, सग तुझ सेवा सारै।
स्वग मृत्यु पाताल अचल तुम चो आधारै।
गिर गुह्वर वर विवर, नगर पुर वर त्रिव चाचर।
आप छदि आणद शक्ति खेल सचराचर।
शिव सगति सुगति खेलि सदा, विविध रूप विश्वेश्वरी ॥ 48 ॥
कवि कुशललाभ कल्याण करि, जय जय जय जगदीश्वरी।

शत्रुंजय यात्रा स्तवन

श्री मुखि श्री गुरुजी कहइ, वेसारी श्री सघ।
जात्र करीजइ जुगति सू, श्री सत्रुंजय स ग ॥ 10 ॥
प्रागवटि सइ प्रगट, साह्याकुलि सिणगार।
जोगीनाथ जाणियइ, दोसी वडदातार ॥ 11 ॥
जोगी सुत श्री सोमजी, सिव बन्धव जोडि अभग।
जात्र मनोरथ मनि करयउ, आणी अति उछरग ॥ 12 ॥
कर जोडी गुरु नइ कहइ, अमनइ हरख अपार।
तीरथ जात्रइ जाइसू साथइ सहू परिवार ॥ 13 ॥
कंकोत्री आदर करी मूकी दस दिसि।
जात्र करेवा आविज्यो, श्री गुरु नइ उपदेस ॥ 14 ॥

ढाल गुड राग

मालवी सघ आवी मिल्यउ, बीकानेयर नउ आवियउ।
सीरोही सूरत नउ मिलयउ, मुग मनि भावियइ ॥ 15 ॥
सघ चाल्यउ सेत्रुंज भणी, हीयइ हरष बहु आणी।
खरतर गच्छ जगि जाणियइ, धन्न धन धन वाणी ॥ 16 ॥ (आन्दो)
पाटणी सघ राधणपुरट, मिलियट सघ धमानि।
जेसलमेर जालोर नउ, छन्दइ सघ गुजराति ॥ 17 ॥
सोल पचासा बच्छरट, मास माघि सुदि पक्खट।
दसमी दिनि रविवारइ, कुंभाक ममग्घट ॥ 18 ॥

सघ सात सई सिजवाली असी, वहिल विसय नइ बीस ।
अउठ अउठ सउ ऊट बहु पोठिया जाकू सघ जगीस ।। 25 ।।
सग भाट भोजिक गुणियण घणा, बोलइ सुजस अपार ।
मुनिवर खरतर गच्छना, मिल्या एक सउ बार ।। 26 ।।
त्रिणि सय तीस महातमा रिपि विसय नइ वीस ।
साध नइ वली साधवी आचारिज पचवीस ।। 27 ।।

घण श्रावक घण श्राविका, पाजइ छरिय प्रमाण ।
सुखइ होडइ सहु माणसइ, वाजत इ नीसाण ।। 28 ।।
सहु असवार सनाह सू राजपूत सउ होइ ।
विसय बत्रीस बहु किया, सउ साथा सोइ ।। 29 ।।

श्री पूज्यवाहण गीत

राग रामगिरी

धममारग उपदसता करता विधइ विहार रे ।
आव्या जी नगर त्रबावती, श्री सघ हुष अपार रे ।। 35 ।।
पूज्य आया त आसा फली, श्रीखरतर गछ गणधार रे ।
श्रीजिनचद सूरी वादयइ साथइ साधुपरिवार रे ।। 36 ।। पू०
आगम सूत्र अर्थ भर्या सुक्रियाण त सार रे ।
चरित्र वखाण्या अति भला, व्रत पचखाण विस्तार रे ।। 37 ।।
वस्तु अपूरिव बहरवा मिल्या भक्ति नरनार रे ।
विनय करि पूजिनइ वीनवइ अपउ वस्तु उदार रे ।। 38 ।। पू०
मोटा श्रावक श्राविका, करइ मडाण अनेक रे ।
महोत्सव अधिक प्रभावना, जाणइ विनय विवेक रे ।। 39 ।। पू०
ज्ञान दरसण चारित्र तणा, अमोलक रतन महत रे ।
पुण्य व्यापारी आवी मिल्या, बहुरता लाभ अनत रे ।। 40 ।।

राग केदार गोडी

दिन दिन महोत्सव अति घणा, श्रीसघ भगति सुहाई ।
मन शुद्धि श्री गुरु सवियइ, जिणि सव्यइ शिव सुख पाई ।। 53 ।।
प्रभु पाटिय चउवीस मइ, श्री पूज्य जिनचद सूरि ।
उद्योतकारी अभिनवो, उदयो पुण्य अकूर ।। 54 ।।
शाह श्रावक भडारी वीरजो, साह राका नइ गुरु राग ।
वद्धमान शाह विनयइ घणो, शाह नगजी अधिक सोभाग ।। 55 ।।

शाह वद्दा शाह पदमसी, शाह देवजी ने जैता शाह।
श्रावक हरखा, हीरजी, भाणजी अधिक उछाह ॥ 56 ॥
भडारी माडण मइ भगती घणी, शाह जावड न घणा भाव।
शाह मनुआ न शाह सहजिया, भडारी अमीउ अधिक उछाह रे ॥ 57 ॥
नित मिलइ श्रावक श्राबका, सभलइ पूज्य बखाण।
हियडइ उलटइ हूलसइ, एम जीव्यो जनम प्रमाण ॥ 58 ॥

राग-गुड मल्हार

आव्यो मास असाढ, झबुके दामिनी रे।
जोवइ प्रियडा वाट सुकोमल कामिनी रे।
चातक मधुरइ सादिकि, प्रिउ ऊचरइ रे।
वरसइ घण वरसात सजल सरवर भरइ रे ॥ 61 ॥

पिंगल सिरोमणि

अथ मदा क्रांता (अष्टी) छद

मदाक्राता विरत कथय।
मो भनो तात मेख ॥

यथा

आखा मुत्ती कर भर दये साधु अप्पा विधाता।
पुट्ठा थापे जय कहि मुखे, चारणी सत पाता ॥
देवी देवा करनल वरो, दणी सिद्धीय दाता।
मीरा भाजे नय कर भमे, सविया आदि माता ॥

अथ मेघविप्फूरणी छद

नमो आदे देवी जुत र र गुरु मेघ विप्फूरणीय।
महो सव्वे देवा वर हर, सही राम नामो अमीय ॥

यथा

सिव सिद्धा अप्पे अप्प वर, गजो इद्रियां सो समीय।
दिव रात देव अह निसि जपो काय वाचा दमीय।
अजामिल्ला कन्हातर भवदधो, मोख मा मागणीय ॥

अथ भ्रमर छप्पय

आकासा धुर रची इक, सच्च भ्रमर गुजार।
भार एक सत भेल करि, सव्वा सिव ततसार ॥

अथ हनुमान वर्णन

यथा

दिन सूरिज होइ दोइ, गिरा गणाग नियौ गम।
विना नाल गोला प्रमाल किना अनल सु आगम ॥
विना तज होइ पुंज, विना पखो ईसरगत।
विना तारका अवध देख, मूकयौ दवपत ॥
विना सरासन हत्थ सिव, अज गव सू छूटयौ सही।
विना रूप धर राम मन, जव जव सू चाल्यौ जिही ॥
सुखम सु तम धर सधर, दस रूप दरसाए।
गढ चढ गिरवर गणण, पवल दिस पठ सुभाए ॥
तपन महोदर धमर धूम, प्रति घर घर पेखे।
दहु दिस सिय हिय हेरि, दरद मन्नि बहु देखे ॥
हणवत तह मन महि हरख, सिय घर घर महि सोधिया।
मुरज विमर घर घर भम, कपि वानन दिस मुहु किया ॥

वार्ता

मागधी छद आदि देन केइक फेर प्रसिद्ध छद छ। सो पूरव दिसी दखिण पछिम दस म जाणणा। मारवाडी मा प्रसिद्ध न छ।

दोहा

भगावा नर कुभ थी, करै कोप श्रीकत।
तद कोदड हाथै करी, मारकुवा भयमत ॥
देवा इद्रा दुदुभी, जैत्र वजाए जोर।
सख करनाल भेरी सघण, घरहरिया बहु घोर ॥
। इति कुम्भ जुद्ध।

अथ मेरु विधि कथन

प्रश्न

सेस मत्त माह सरस, खड मेर किय रीत।
आचारज रै मत अधिक, करी सपूरण कीत ॥

अरहटटा छद

प्रश्न

प्रस्तारा री पकति माह, लहु गुरु किण किण ठाइ।
एक घटे धण रूप भेद थी, पूरण मेर वताइ ॥

अथ लेखा, अनुग्या, अवग्या अलंकार

केई तो कवि लेखा अवग्या अनुग्या कहै छैं सु नांम भद छै।
न अलकार तो एक हीज छै। नै कितरा रा मत दखो सुकह्यो।
ए चिह्न जुवा जुवा छै-सु कवि हरराज विचारियो ज अलकार तो
त्रिह्न जुदा जुदा खरा, सु दसातर पिण एहवा नाम सुणीया नही।
तद जाणियो कि जुदा खरा, तरै गुरुजी श्री कुसललाभ था प्रस्न—
कि महाराज आप फुरमावो—एणा तीना अलकारा रा नाम
तीन जुदा जुदा सुणिया, नैं लखण एकसा हीज मालूम पडिया,
सो कहीजे, नैं अलकार ता आभूपण कहिया। सव सासत्र
रो ग्रहणो छै। जिण विध थी ग्रहणो परिहरि स्त्री पुरुप
सुदर दीसे, तिण विध थी गीत, कवित्त दूहो, छद,
गाथा फूटरो दीस। महाराज आप फुरमावो सो अलकार
ग्रथ आचारज कृत छै, किना सेस कृत छै, सो कहो॥

उत्तर—दोहा

सेस पिंगल रचिया सरस, अलकार कृत और।
सुक्राचारिज गुर सरस, तए ठौर ही ठौर॥
वालमीक सुक व्यास विध, सौनिक रिख कइ सत।
अलकार करता अवर, तवि तवि कथियो सत॥

वार्ता

इण माहे छ तैं ससत्रस छै सु रसक ग्रथा रा अग वाचे। तठा सु अग बाधण री विचार वणन ग्रथ छ, सु तो सरीर छ नैं माहू नाम माला सु अस्थि छ, नैं रचना ग्रथा री सा त्वचा, नैंम जाणे सो पिंगल सो जीव छ। न अग अपुग तो-वीजा घणा छै, न अलकार आभूपण छै। इण विध थी सर्व जाणणा।

अपनारी छंद

काठा अख्यर सख्या कर, आदू अतप एकू भर।
मस्वागतय भोले अहि, यो आचारिज भी सो कहि॥

(इति मेर निरूपण)

वार्ता—किणे ही कविसर कोई कविसर न पूछियो के प्रस्तारा हदे वरण माहे लहु गुर पकति किण विध थी जाणीजै, एक एक थी इण ही रीत थी मोनु समझाय नैं कहो। जरे इण विध थी कहीज—पहिला पूछण री रीत कही, हमैं केहण री रीत छ। ज्यो सगला कविसर समझ जिण वरण थी जितरा वरण प्रस्तार पूछै, तितरा नु अख्खरा री सख्या कर उतरा हीज काठा करीजैं, मेर रो आकार हुवै। जिण रीत थी ऊपर एक कोठ करन नीचे खण राखण इण विध छाइस पयत ताई माडीजे तद छाइस हीज खण रहे। इण विध थी मेर रो जम्र माडीजे नैं पछे आदी रै विख

नै अत रै विखे एव एव आव दीजै। आदी अत एका आव थी भरीज। पछे अस्व गति कीजै। अस्वगतिका सु घोडा री चाल री गति माडीज। तो घोडो किण रीत सु चालै जिका साख सख्या निरण ग्रथ माहे कही छै। सख्या निरण कवि चद वरदाई रो कहियो छै।

दोहा

"पखी गति त्रिहु पाइ पढि, जिहु पग्गा चोडोल।"
पखी इसो नाम घोडा रो कहियो सो रासा थी लहियो।

साख रासा री, सजोगता समइया माह—

निसाणा निहस्सै विना पख नस्सा।
उकस्सै जाणि काली उसस्सा॥

आ साख रासा री। चोडोल नाम हाथी रो छै। जिका साख बारहट सुदरसणउ डिगल थी कहै,

सोरठा माहे

"नेजा नीसाणाह, चोडोला पर कसि चतुर।"

अथ गीत काछो

दोहा—

मुनि मित मत्ता पाच थळ पाछ मित खट पाय।
विस्रामा कठ एण विध, काछो गीत कहाय॥

वार्ता

मत्ता जिम कही तिम ही कीजै। पिण एक माहे व्यग जाणणो, सो कह। इण माहे प्रथम तीजो तुकमेल राखीजै। दूजै नै चौथे मेल कीज।

यथा

मारका दल राम मेल अरि उखेलै, पाज जेल पाथरा।
सुज चाहि सिया कोप किया, आगिया रिण जग॥
बदर बडाला भड भुजाला, करण चाला काम रा,
वरियाम बका लियण लका, असका अणभग॥ 1॥
परठ पाथर गिवर सायर, विसम थरहर पाज।
आवीयो सेना रामजे ना धजा केना धज्ज॥
धज रथ पतका आण वका, जुडे लका काज।
जलजला विवा वर उलधा, सन सधा सज्ज॥ 2॥
दाणव वटाला पड अटाला, भटाला भूगाल।
पय लटा सट्टा चटा चट्टा पाछटा गज घट।
गाहटा घट्टा दरह भट्टा, खग झटा रिण बोल।
गदा मुदगर झरर पाथर, सघई थरहर घट॥ 3॥

जो कध भग्गा ग्रथ्य लग्गा, विना खगा सेत।
दुख टाल् सभ, देव वभ, सधर खभ भज।।
धर धमळ मगळ, मळळ लहू कळ, भळळ झळोयळ देत।
किल खळळ निरमळ सळळ परमळ, हळळ मलोयळ कज।। 4 ।।

अथ उडिंगल नाम माला लिख्यते

जोधा नाम

सिह सूर सामत जोध भुजपाल पहा भिड।
भिडै फौज गाहणा वेढ भीचा जाधारभिड।।
अणी भमर वधि समर अछरवर हुसा अखा
सवल दला गाहणा सूरमडळ भिद सखा
रूप फौज भूप आगल रहे कवि पिंगल अे नाम कहि।
जोधार जिमा भीमेण ज्यो महाअडिग कमधाण महि।।

गीत

अथ सावझडी

आद्य आद तुक आचली, तीन बीस कळ तास।
चव तुक दूजी त्री चतुर जोड वीस कळ जास।

यथा

तू अफेर आ करीठ, पीठ धर है-पट्टी।
धीर निम्रीठ तू रीठ पडता धट्टा।।

यथा

तू गरीठ गाहणो, भीठ भर खग झटां।
भार भर भाजणो देख अरियण भटा।। 1 ।।
धार सरसी धरी जू सहरां धवळ तू।
अगम भारावियां, दुगम भुज अवल तू।।
पारकर विकटधर जिसी पाण धार तू।।
महा अनमध कर अभिनमां माल तू।। 2।।
मेर जिम भार वर धारीया मरद तू।।
भुजवरां भारधारी ब्रहाड तू।
बाधण चो अगड बांधणं बध तू।।
अवतारी पुरख नमो अनमध तू।। 3।।
गुमर धारीयां विरद धर ग्रद्ध चो।
नमो जिण सिद्ध नु विभोकर निद्ध चो।।
अमल जस धारियां धमल अणमिद्ध चो।।
धवो जिम छत्र रहि, देवरा सिद्ध चो।। 4 ।।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

कुशललाभ द्वारा विरचित रचनाएँ

1 ढोला मारवणी री चौपई—लि० का० सं० 1639 (हस्तलिखित—डा. ब्रजमोहन जावलिया का संग्रह उदयपुर)
2 माधवानल कामकंदला चौपई—डा० ब्रजमोहन जावलिया निजी संग्रह
3 भीमसेन राजहंस चौपई—लालभाई दलपतभाई इंस्टीट्यूट ऑफ इंडोलोजी—अहमदाबाद ग्रंथांक—1217
4 पार्श्वदशभव स्तवन—ला० द० इंस्टीट्यूट ऑफ इंडोलोजी, अहमदाबाद, ग्रंथांक 975
5 अगडदत्त रास—भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना—ग्रंथांक 605
6 जगदम्बा छंद—राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर, ग्रं०, 602/1423
7 स्थंभण पार्श्वनाथ स्तवन—आचार्यश्री विनयचंद्र ज्ञान भंडार, जयपुर, ग्रंथांक—37/80 आनंद काव्य महोदधि, मौक्तिक 7—बम्बई
8 नवकार मंत्र छंद— ,, ,, ,, ,, ग्रंथ 37/31
9 गौड़ी पार्श्वनाथ छंद—रा प्रा वि प्रतिष्ठान, जोधपुर ग्रं० 6060
10 तेजसार रास— ,, ,, ,, ,, ग्रं० 26546
11 तेजसार रास—जयमंदिर कृत—अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर ग्रंथांक 1545
12 गुण सुन्दरी चौपई—दिगम्बर जैनमंदिर दीवानजी, कामां (भरतपुर) बस्ता नं० 270
13 जिन पालित जिन रक्षित रास—महिमा भक्ति जैन ज्ञान भंडार, बड़ा उपाश्रय, बीकानेर, ग्रंथांक 2570
14 शत्रुंजय यात्रा स्तवन—अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर—ग्रंथांक 7744
15 पूज्य वाहण गीत—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह—(सं०) अगरचंद भंवरलाल नाहटा, बीकानेर।
16 दुर्गा सातसी—अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर—ग्रं० 68 (घ)
17 पिंगल शिरोमणि—राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर
18 स्थूलिभद्र छत्तीसी—अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर—ग्रं० 87/4209

सहायक ग्रन्थ

1 ढोला मारू रा दूहा—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी—सं० 2011
2 ढोला मारू रा दूहा मे काव्य सौष्ठव संस्कृति और इतिहास—
डॉ भगवती लाल शर्मा अचना प्रकाशन जयपुर 1970 ई०
3 कुशललाभ, व्यक्तित्व और कृतित्व—डॉ मनमोहन स्वरूप माथुर
4 कुशललाभ के कथा साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन—डॉ रुक्मिणी वैश्य
5 जन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि—डा प्रेम सागर जैन
6 जन कथाओं का सास्कृतिक अध्ययन—श्रीचन्द जैन
7 जन साहित्य और इतिहास—नाथूराम प्रेमी
8 प्राकृत—जन कथा साहित्य—जे सी जैन
9 वसुदेव हिण्डी—एल डी इस्टीट्यूट ऑफ इडोलोजी, अहमदाबाद
10 जन कथा साहित्य—प्रो फूलचन्द सारग
11 ढोला मारू—प्रो कृष्ण बिहारी सहल
12 ढोला मारू रा दूहा—प्रो शभुसिह मनोहर
13 राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ मोतीलाल मेनारिया
14 राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ हीरालाल माहेश्वरी
15 प्रबन्ध पारिजात—रावत सारस्वत
16 सदेश रासक - अब्दुल रहमान - (स० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा
विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी) राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
17 प्रिथीराज राठौड़—रावत सारस्वत साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली
18 दुरसा आढा—रावत सारस्वत, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली
19 जाम्भोजी—डा हीरालाल माहेश्वरी, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली
20 आनन्द काव्य महोदधि—(प्र०) सेठ दलीचन्द लालभाई फड, झवेरी
बाजार, मुबई 1926 ई०
21 माधवानल कामकदला प्रबन्ध—गायकवाड ओरियटल सीरिज, बडौदा,
1942

22 ऐतिहासिक जन काव्य संग्रह—अगरचंद नाहटा, भँवरलाल नाहटा—बीकानेर
23 जैन गूजर कविओ—मोहनलाल दलीचंद देसाई
24 भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी
25 प्राकृत कथा साहित्य और उसकी विशेषताएँ—मरुधर केशरी अभिनंदन ग्रंथ
26 मध्ययुगीन प्रेमाख्यान—डा० श्याम मनोहर पाण्डेय
27 राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा—अगरचंद नाहटा
28 राजस्थान के जैन संत व्यक्तित्व और कृतित्व—डॉ कस्तूरचंद कासलीवाल
29 राजस्थानी साहित्य कुछ प्रवृत्तियाँ—डॉ नरेंद्र भानावत

पत्र-पत्रिकाएँ

परम्परा, मरुभारती, मरुवाणी, राजस्थान भारती, वरदा, शोध पत्रिका मज्झमिका।

••

